संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित
॥ ऋषि प्रसाद ॥
हिन्दी
विजयादशमी, १९ अक्तूबर
दशानन को मार गिराकर,
जैसे श्रीराम हुए विजयी।
तुम भी दसों इन्द्रियों को जीतो,
"विजयादशमी" का संदेश यही॥
वर्षः १०
अंकः ८२
अक्तूबर १९९९
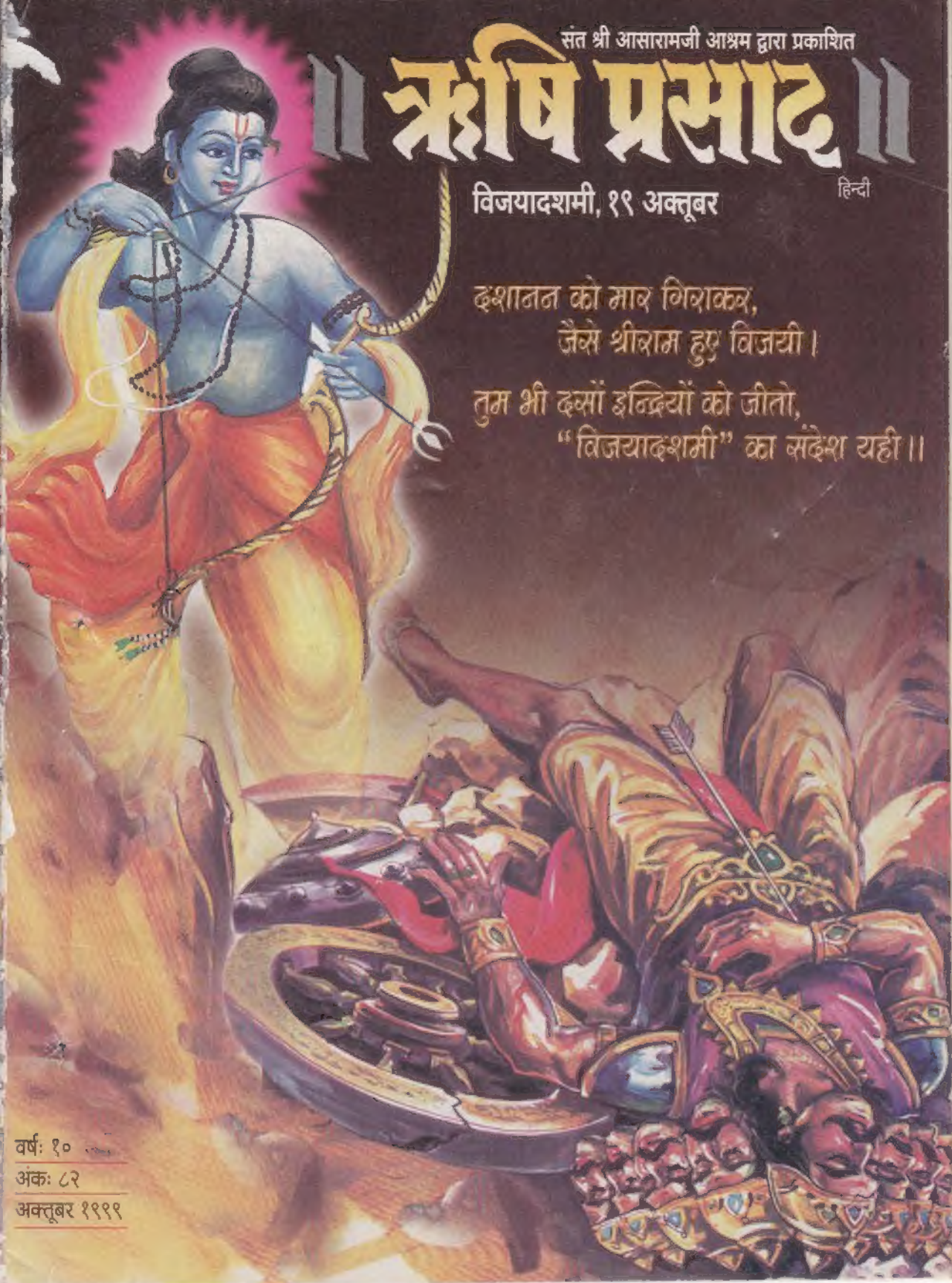
ऋषि प्रसाद

वर्ष : १०
अंक : ८२
९ अक्तूबर १९९९
सम्पादक : क. रा. पटेल
प्रे. खो. मकवाणा

मूल्य : रू. ६-००

सदस्यता शुल्क

भारत में
(१) वार्षिक : रू. ५०/-
(२) पंचवार्षिक : रू. २००/-
(३) आजीवन : रू. ५००/-

नेपाल व भूटान में
(१) वार्षिक : रू. ७५/-
(२) पंचवार्षिक : रू. ३००/-
(३) आजीवन : रू. ७५०/-
(डाक खर्च में वृद्धि के कारण)

विदेशों में
(१) वार्षिक : US $ 30
(२) पंचवार्षिक : US $ 120
(३) आजीवन : US $ 300

कार्यालय
'ऋषि प्रसाद'
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आसारामजी आश्रम
साबरमती, अमदावाद-३८०००५.
फोन : (०७९) ७५०५०१०, ७५०५०११.

प्रकाशक और मुद्रक : क. रा. पटेल
श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा, साबरमती, अमदावाद-३८०००५ ने पारिजात प्रिन्टरी, राणीप, अमदावाद एवं पूर्वी प्रिन्टर्स, राजकोट में छपाकर प्रकाशित किया।

अनुक्रम

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्रव्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें।

मुक्ति कैसे पायें ?

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

असमाधेरविक्षेपान्न मुमुक्षुर्न चेतरः।
निश्चित्य कल्पितं पश्यन्ब्रह्मैवास्ते महाशयः॥

'ज्ञानी पुरुष समाधिरहित होने के कारण मुमुक्षु नहीं है और विक्षेप (द्वैतभ्रम) के अभाव के कारण उसके विपरीत अर्थात् बद्ध भी नहीं है परंतु निश्चयपूर्वक इस सब जगत को कल्पित समझता हुआ ब्रह्मवत् स्थित रहता है।'

(अष्टावक्रगीता : १८.२८)

अष्टावक्र मुनि कहते हैं कि ज्ञानी महापुरुष को न समाधि है, न विक्षेप है, न मुमुक्षा है। मुमुक्षा उसे होती है जिसे छूटना होता है। ज्ञानी को न छूटना है, न बँधना है।

छूटने की चाह भी तो एक इच्छा है। हालाँकि धन की इच्छा, मान की इच्छा, नश्वर भोगों की इच्छा से तो भगवान की भक्ति की इच्छा अच्छी है। फिल्म देखने की इच्छा से तो भजन-कीर्तन में जाने की इच्छा ठीक है लेकिन है तो इच्छा ही। फिल्म देखकर मनुष्य थोड़ा रजस्-तमस् का मजा लेता है तो कीर्तन करके थोड़ा सात्त्विक मजा लेता है लेकिन मजा जहाँ से आता है वहाँ तो उसकी अभी गति नहीं हुई है।

'मैं कौन हूँ ? जगत क्या है ? भगवान कैसे हैं ? मुक्ति क्या है ?' ऐसे प्रश्न जिसके हृदय में अपने-आप उठने लगें तो समझना चाहिए कि उसका भजन फलित हो रहा है।

यह बात ठीक है कि अन्य इच्छाओं को मिटाने के लिए मुक्ति की इच्छा की जाये, किन्तु जब मनुष्य ऊँचा उठता है तो एक ऐसी घड़ी आती है कि मुक्ति की इच्छा भी उसे बाधक लगने लगती है। मुक्ति की इच्छा भी जब छूट जाती है तब मनुष्य परम पद पाने का, मोक्ष पाने का अधिकारी बनता है।

मुक्ति की इच्छा भी तो भविष्य की इच्छा ही है और जो भविष्य में सुखी होने की इच्छा रखते हैं, भविष्य में भगवान से मिलने की इच्छा करते हैं वे तो मानों संसार की इच्छा को ही दृढ़ करते हैं। जो वर्त्तमान में ही इच्छाओं को छोड़ देते हैं, उनके हृदय में उसी समय परमात्म-प्रेम, परमात्म-रस छलकने लगता है।

मेरे गुरुदेव से किसी व्यक्ति ने प्रश्न किया कि : ''मुक्ति कैसे पायें ? संसार की इच्छाएँ कैसे छूटें ?''

गुरुदेव बोले : ''मान लो एक कुआँ है जिसमें काई हो जाने के कारण गंदगी हो गयी है। अब कोई पूछे कि 'इस कुएँ का पानी तो काम नहीं आ सकता। इसको काम में कैसे लाया जाये ?'

जवाब होगा : 'मछलियाँ डाल दो।'

काई को तो मछलियाँ साफ कर देती हैं किन्तु धीरे-धीरे मछलियों का परिवार बढ़ जाता है। फिर कछुआ डाल दो। कछुआ धीरे-धीरे मछलियों को साफ कर देगा। फिर कछुए को भी निकाल दो तो पानी निर्मल हो

जायेगा।

ऐसे ही सुख लेने की इच्छाएँ हमें चंचल कर देती हैं, विक्षिप्त कर देती हैं। अतः उस विक्षेप को हटाने के लिए, चंचलता और आसक्ति को हटाने के लिए, सुख लेने की इच्छा हटाने के लिए सुख देने की इच्छा डाल दो तो संसार की विषय-विकारोंरूपी काई को साफ करने में मदद मिलेगी और भीतरी सुख उभरने लगेगा।''

वैसे भी सुख लेने की इच्छा हमें वास्तव में दुःख ही देती है जबकि सुख देने की इच्छा से आनंद आने लगता है। सेवा लेनेवाले को उतना आनंद नहीं आता जितना सेवा करनेवाले को आता है। भोजन करनेवाले को उतना आनंद नहीं आता, जितना भोजन करानेवाले को आता है। दान लेनेवाले को उतना आनंद नहीं आता, जितना उत्साह से दान देनेवाले को आता है। यह तो कइयों का अनुभव है।

सेवा करके सुखी होना यह आदर्श भोक्ता के लक्षण हैं जबकि सेवा लेकर सुखी होना यह बीमार भोक्ता के लक्षण हैं।

सेवा करके सुखी होना यह आदर्श भोक्ता के लक्षण हैं जबकि सेवा लेकर सुखी होना यह बीमार भोक्ता के लक्षण हैं... लेकिन हैं दोनों भोक्ता ही। अभी परम शांति से वे दोनों दूर हैं। सेवा करते-करते अन्तःकरण की शुद्धि होने लगती है और उसमें लीन होने से शांति प्राप्त होती है। शांति दोषों की निवर्तक व प्रसाद की जननी है। वह परमात्मशांति ही सार है। परमात्मशांति जहाँ से प्रकट होती है उस परमात्मस्वभाव में जाग जाना परम सार है।

फिर मनुष्य के मन में जिज्ञासा उठने लगती है कि 'मैं कौन हूँ ? जगत क्या है ? भगवान कैसे हैं ? मुक्ति क्या है ?' आदि। ऐसे प्रश्न जिसके हृदय में अपने-आप उठने लगें तो समझना चाहिए कि उसका भजन फलित हो रहा है। उसमें मोक्ष की आकांक्षा जाग उठती है। फिर साधक देखने लगता है कि 'कौन-सी इच्छा आयी ? इच्छा पूरी हुई तो क्या ?' इस प्रकार उसकी सात्त्विक इच्छाएँ भी छूटने लगती हैं।

सब इच्छाओं को हटाते-हटाते अंत में मुक्ति की इच्छा आये या भगवद्-दर्शन की इच्छा आये तो उसको भी हटा दो। फिर देखो, कितनी शांति और कितना आनंद आपके हृदय में अपने-आप प्रगट होने लगता है! फिर तो नानकजी की भाषा में आपकी ऐसी स्थिति हो जायेगी कि :

भोग-जोग जाके नहीं, वैरी मीत समान।
कह नानक सुन रे मना, मुक्त ताहि ते जान॥

मलिन वासनाओं को हटाने के लिए शुद्ध वासनाओं की आवश्यकता होती है। जगत के आकर्षण और चिंतन से बचने के लिए भगवान के भजन-कीर्तन की, भगवद्-चिंतन की आवश्यकता है लेकिन जब आप वासनाओं को, इच्छाओं को महत्त्व देना बंद कर देते हो, मन से संबंध-विच्छेद कर लेते हो तो फिर शुभ वासनाओं की, शुभ इच्छाओं की भी कोई जरूरत नहीं रह जाती।

तुच्छ इच्छा-वासनाओं का प्रभाव आप पर तब तक ही रहता है जब तक आप सावधान नहीं रहते हो। आप सावधान हो गये तो फिर वासनाओं का प्रभाव भी नष्ट हो जायेगा। वासनाएँ आती हैं मन में और आप असावधान रहते हैं तो उनकी पूर्ति में लग जाते हैं। यदि आप सावधान हो गये तो आप उन्हें पूरी करने में नहीं लग जायेंगे, बल्कि थोड़ा विचार करेंगे। अतः इच्छाओं को मिटाने के लिए सतत मन का निरीक्षण करते रहो। उसे तुच्छ विषय-विकारों की ओर जाने से रोकते रहो। जैसे पंखा घूमता है किन्तु यदि आप बटन

बंद कर दें, विद्युत-संपर्क काट दें तो उस पंखे का घूमना कब तक जारी रहेगा ? ऐसे ही आप मन का संबंध काट दोगे तो इच्छाएँ भी कोई प्रभाव नहीं रख सकेंगी।

आप जब मन को सत्ता देते हो तभी वासनाएँ आपको दबा देती हैं। मन को सत्ता देने से, स्वीकृति देने से ऐहिक जगत के नश्वर भोग आप पर हावी हो जाते हैं जबकि मन के द्रष्टा बनने पर आपकी जीत हो जाती है। इसीलिए अष्टावक्र मुनि कहते हैं कि :

'महापुरुष लोग सारे जगत को कल्पित जानते हैं। उनको न समाधि है न विक्षेप है, न मुमुक्षा है न अन्य कुछ है। वे तो समस्त दृश्य जगत को निश्चित रूप से कल्पित जानकर ब्रह्म में स्थित हो जाते हैं।'

> *जो वर्त्तमान में ही इच्छाओं को छोड़ देते हैं, उनके हृदय में उसी समय परमात्म-प्रेम, परमात्म-रस छलकने लगता है।*

यह जगत कल्पित है। जिस वक्त जैसी कल्पना होती है उस वक्त जगत वैसा ही लगता है। जिन्होंने थोड़ा-सा भी सत्संग सुना है उनके मन पर दूसरे की कल्पना का अधिक प्रभाव नहीं पड़ता। ...और यदि वह अपनी कल्पना से आप पार हो जाये तो पूरे विश्व का भी उसके चित्त पर प्रभाव नहीं पड़ता है। वह 'विश्वजित' कहलाता है।

ऐसा नहीं कि किसीकी संस्था को देखकर कोई प्रभावित हो जाये कि हम भी ऐसी ही संस्था बनायें, किसीके सौन्दर्य को देखकर आप भी सुन्दर दिखना चाहे, किसीकी गाड़ी देखकर खुद भी वैसी ही गाड़ी खरीदनें की सोचने लगे। ना ना... जैसे हर फूल अपनी जगह पर अपने ही ढंग से, सहज रूप से खिलता है, वैसे ही निर्वासनिक पद में आने पर आपसे सहज स्वाभाविक रूप से जो होगा वह बहुत अच्छा होगा। किसीके महल-बँगले, गाड़ी-वाड़ी, बगीचा देखकर वैसा ही बनाने या लेने की इच्छा हो गयी तो वह सब न मिलने पर मन में खटकेगा और मिल गया तो उतना सुख नहीं मिलेगा जितना निर्वासनिक होने पर मिलता है। उन भोगों से प्राप्त सुख तो क्षणिक होगा जबकि निर्वासनिक होने पर सुख का दरिया आपके भीतर ही लहरा उठेगा।

हकीकत में परम पद पाना कठिन नहीं है, लेकिन ये इच्छाएँ ही मनुष्य को जन्म-मरण के चक्र में घुमाती रहती हैं। हाँ, कई बार ऐसा भी होता है कि तुच्छ इच्छाओं की जगह कुछ अच्छी इच्छाएँ उठती हैं, परमात्म-प्राप्ति की भी इच्छा उठती है किन्तु है तो इच्छा ही। तुच्छ इच्छाएँ लोहे की जंजीर हैं तो ये अच्छी इच्छाएँ सोने की जंजीर हैं। 'अभी यहाँ ईश्वर नहीं हैं, हिमालय में जाऊँगा तब मिलेंगे... अभी तो धन कमा लूँ फिर 'डिपोजिट' रखकर पेंशन मँगाकर आराम से भजन करूँगा...' यदि ऐसा सोचने लगे तो समझो आपने मुक्ति के द्वार बंद कर दिये। अतः इच्छाओं का त्याग करो।

इच्छाओं का त्याग करते-करते एक ऐसी ऊँची अवस्था आती है जहाँ समाधि की भी आवश्यकता नहीं पड़ती। रोग हो तब तक औषधि की आवश्यकता पड़ती है और रोग ही न रहे तो औषधि की कोई आवश्यकता नहीं है। ऐसे ही जिसकी वासनाएँ पूर्णतः निर्मूल हो गयीं, जिसने निर्वासनिक पद को पा लिया उसके लिए समाधि की भी आवश्यकता नहीं रह जाती।

अष्टावक्रजी महाराज इसीलिए कहते हैं :

''महाशय ज्ञानी को न समाधि है न विक्षेप है, न मुमुक्षा है न अन्य कुछ। समस्त दृश्य जगत को निश्चय ही कल्पित जानकर वह ब्रह्म में स्थित

हुआ है।''

इसी बात को श्री भोलेबाबा ने 'वेदान्त छन्दावली' में इस प्रकार कहा है :

करता समाधि है नहीं, जिसमें नहीं विक्षेप है ।
नहीं मोक्ष ही है चाहता, रहता सदा निर्लेप है ॥
विश्व कल्पित जानकर, नहीं चित्त को भटकाय है ।
संलग्न रहता ब्रह्म में, सो धीर शोभा पाय है ॥

जिसका महान् आशय है, उसे 'महाशय' कहा जाता है। महान् आशय है अपने जीवन-तत्त्व को जानना। जो अपने ऊपर किसी भी प्रकार की इच्छा-वासनाओं की रेखा न खींचे अथवा खींची हुई रेखा को जिसने हटा दिया है, वह 'महाशय' है। ऐसा महाशय ही समस्त दृश्य जगत को कल्पनामात्र मानकर ब्रह्मस्वरूप में स्थित होता है।

हे मानव ! तू भी उठ, जाग और समस्त इच्छा-वासनाओं को त्यागकर एक बार निर्वासनिक पद पाकर तो देख ! फिर मनुष्य तो क्या, समस्त यक्ष, गंधर्व, किन्नर तेरे चरणों में सिर झुकाने को तैयार हो जाएँगे... देवता भी तेरा दर्शन कर अपना भाग्य बनाएँगे... ऐसा तू महिमावान् हो जायेगा।

सेवाधारियों एवं सदस्यों के लिए विशेष सूचना

(१) कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नगद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी। अतः अपनी राशि मनीआर्डर या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजने की कृपा करें।

(२) 'ऋषि प्रसाद' के नये सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आपकी सदस्यता की शुरुआत पत्रिका की उपलब्धता के अनुसार कार्यालय द्वारा निर्धारित की जाएगी।

संतों का संग अमोघ होता है

❋ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❋

जब-जब हम ईश्वर एवं गुरु की ओर खिंचते हैं, आकर्षित होते हैं तब-तब मानों कोई-न-कोई सत्कर्म हमारा साथ देते हैं और जब-जब हम दुष्कर्मों की ओर धकेले जाते हैं तब-तब मानों हमारे इस जन्म अथवा पूर्वजन्म के दूषित संस्कार अपना प्रभाव छोड़ते हैं। अब देखना यह है कि हम किसकी ओर जाते हैं ? हम पाप की ओर झुकते हैं कि पुण्य की ओर ? संत की ओर झुकते हैं कि असंत की ओर ? जब तक आत्मज्ञान नहीं होता तब तक संग का रंग लगता रहता है। संग के प्रभाव से साधु असाधु बन जाता है एवं असाधु भी साधु हो जाता है।

किया हुआ भगवान का स्मरण कभी व्यर्थ नहीं जाता। किया हुआ ध्यान-भजन, किये हुए पुण्यकर्म हमें सत्कर्मों की ओर ले जाते हैं। इसी प्रकार किये हुए पापकर्म, हमारे अंदर के अनंत जन्मों के पाप-संस्कार हमें इस जन्म में दुष्कृत्य की ओर ले जाते हैं। फिर भी वे ईश्वर हमें कभी-न-कभी जगा देते हैं जिसके फलस्वरूप पाप के बाद हमें पश्चाताप होता है और वैराग्य आता है। उसी समय यदि हमें कोई सच्चे संत मिल जायें, किन्हीं सद्गुरु का सान्निध्य मिल जाये तो फिर

हो जाये बेड़ा पार।

स्वार्थ, अभिमान एवं वासना के कारण हमसे पाप तो खूब हो जाते हैं लेकिन संतों का संग हमें पकड़-पकड़कर, पाप में से खींचकर भगवान के ध्यान में ले जाता है। हजार-हजार असंतों का संग होता है, हजार-हजार झूठ बोलते हैं फिर भी एक बार का सत्संग दूसरी बार और दूसरी बार का सत्संग तीसरी बार सत्संग करा देता है। ऐसा करते-करते संतों का संग करनेवाले एक दिन स्वयं संत के ईश्वरीय अनुभव को अपना अनुभव बना लेने में सफल हो जाते हैं।

हजारों जन्मों के माता-पिता, पति-पत्नी आदि जो नहीं दे सके, वह हमको संत-सान्निध्य से हँसते-खेलते मिल जाता है।

...तो मानना पड़ेगा कि किया हुआ संग चाहे पुण्य का संग हो या पाप का, असंत का संग हो या संत का, उसका प्रभाव जरूर पड़ता है। फर्क केवल इतना होता है कि संत का संग गहरा असर करता है, अमोघ होता है जबकि असंत का संग छिछला असर करता है। पापियों के संग का रंग जल्दी लग जाता है लेकिन उसका असर गहरा नहीं होता, जबकि संतों के संग का रंग जल्दी नहीं लगता और जब लगता है तो उसका असर गहरा होता है। पापी व्यक्ति इन्द्रियों में जीता है, भोगों में जीता है, उसके जीवन में कोई गहराई नहीं होती इसलिए उसके संग का रंग गहरा नहीं लगता। संत जीते हैं सूक्ष्म से सूक्ष्म परमात्मतत्त्व में और जो चीज जितनी सूक्ष्म होती है उसका असर उतना ही गहरा होता है। जैसे, पानी यदि जमीन पर गिरता है तो जमीन के अंदर चला जाता है क्योंकि जमीन की अपेक्षा वह सूक्ष्म होता है। वही पानी जमीन में गर्मी पाकर वाष्पीभूत हो जाये, फिर चाहे जमीन के ऊपर आर. सी. सी. बिछा दो तो भी पानी उसे लाँघकर उड़ जायेगा। ऐसे ही सत्संग व्यर्थ नहीं जाता क्योंकि संत अत्यंत सूक्ष्म परमात्मतत्त्व में जगे हुए होते हैं। हमारे घर की पहुँच हमारे गाँव तक होती है, गाँव की पहुँच राज्य तक होती है, राज्य की पहुँच राष्ट्र तक, राष्ट्र की पहुँच दूसरे राष्ट्र तक होती है किन्तु संतों की पहुँच... इस पृथ्वी को तो छोड़ो, ऐसी कई पृथ्वियाँ, कई सूर्य एवं उसके भी आगे अत्यंत सूक्ष्म जो परमात्मा है, जो इन्द्रियातीत, लोकातीत, कालातीत है, जहाँ वाणी जा नहीं सकती, जहाँ से मन लौट आता है उस परमात्मपद, अविनाशी आत्मा तक होती है। यदि हमें उनके संग का रंग लग जाये तो फिर हम किसी भी लोक-लोकान्तर में, देश-देशान्तर में हों या इस मृत्युलोक में हों, सत्संग के संस्कार हमें उन्नति की राह पर ले ही जायेंगे।

पापकर्म हमारी मन की शांति खा जायेगा, हमें वैराग्य से हटाकर भोग में रुचि करायेगा जबकि पुण्यकर्म हमारे मन की शांति बढ़ाता जायेगा, हमारी रुचि परमात्मा की ओर बढ़ाता जायेगा।

अपनी करनी से ही हम संतों के नजदीक या उनसे दूर चले जाते हैं। हमारे कुछ निष्कामता के, सेवाभाव के कर्म होते हैं तो हम भगवान और संतों के करीब जाते हैं। संत-महापुरुष हमें बाहर से कुछ न देते हुए दिखें किन्तु उनके सान्निध्य से हृदय में जो सुख मिलता है, जो शांति मिलती है, जो आनंद मिलता है, जो निर्भयता आती है वह सुख, वह शांति, वह आनंद विषयभोगों में कहाँ ?

एक युवक एक महान् संत के पास जाता था। कुछ समय बाद उसकी शादी हो गई, बच्चे हुए। फिर वह बहुत सारे पाप करने लगा। एक दिन वह रोता हुआ अपने गुरु के पास गया और बोला :

''बाबाजी ! मेरे पास सब कुछ है- पुत्र है, पुत्री है, पत्नी है, धन है लेकिन मैं अशांत हो गया

हूँ। शादी के पहले जब आता था तो जो आनंद व मस्ती रहती थी, वह अब नहीं है। लोगों की नजरों में तो मैं लक्षाधिपति हो गया लेकिन बहुत बेचैनी रहती है बाबाजी !''

बाबाजी : ''बेटा ! कुछ सत्कर्म करो। प्राप्त संपत्ति का उपयोग भोग में नहीं, अपितु सेवा और दान-पुण्य में करो। जीवन में सत्कृत्य करने से बाह्य वस्तुएँ पास में न रहने पर भी आनंद, चैन और सुख मिलता है और दुष्कृत्य करने से बाह्य ऐशो-आराम होने पर भी सुख-शांति नहीं मिलती है।''

पापियों के संग का रंग जल्दी लग जाता है लेकिन उसका असर गहरा नहीं होता, जबकि संतों के संग का रंग जल्दी नहीं लगता और जब लगता है तो उसका असर गहरा होता है।

हम सुखी हैं कि दुःखी हैं, पुण्य की ओर बढ़ रहे हैं कि पाप की ओर बढ़ रहे हैं- यह देखना हो और लंबे-चौड़े नियमों एवं धर्मशास्त्रों को न समझ सकें तो इतना तो जरूर समझ सकेंगे कि हमारे हृदय में खुशी, आनंद और आत्मविश्वास बढ़ रहा है कि घट रहा है। पापकर्म हमारा मनोबल तोड़ता है। पापकर्म हमारी मन की शांति खा जायेगा, हमें वैराग्य से हटाकर भोग में रुचि करायेगा जबकि पुण्यकर्म हमारे मन की शांति बढ़ाता जायेगा, हमारी रुचि परमात्मा की ओर बढ़ाता जायेगा।

जिस तरह अग्नि में लोहा डालने से लोहा अग्निरूप हो जाता है, उसी तरह संत-समागम से मनुष्य संतों की अनुभूति को अपनी अनुभूति बना सकता है।

जो लोग स्नान-दान, पुण्यादि करते हैं, सत्कर्म करते हैं उनको संतों की संगति मिलती है। धीरे-धीरे संतों का संग होगा, पाप कटते जायेंगे और सत्संग में रुचि होने लगेगी। सत्संग करते-करते भीतर के केन्द्र खुलने लगेंगे, ध्यान लगने लगेगा।

हमें पता ही नहीं है कि एक बार के सत्संग से कितने पाप-ताप क्षीण होते हैं, अंतःकरण कितना शुद्ध हो जाता है और कितना ऊँचा उठ जाता है मनुष्य ! यह बाहर की आँखों से नहीं दिखता। जब ऊँचाई पर पहुँच जाते हैं तब पता चलता है कि कितना लाभ हुआ ! हजारों जन्मों के माता-पिता, पति-पत्नी आदि जो नहीं दे सके, वह हमको संत-सान्निध्य से हँसते-खेलते मिल जाता है। कोई-कोई ऐसे पुण्यात्मा होते हैं जिनको पूर्वजन्म के पुण्यों से इस जन्म में जल्दी से गुरु मिल जाते हैं। फिर ब्रह्मज्ञानी संत का सान्निध्य भी मिल जाता है। ऐसा व्यक्ति तो थोड़े-से ही वचनों से रँग जाता है। जो नया है वह धीरे-धीरे आगे बढ़ता है। जिसके जितने पुण्य होते हैं, उस क्रम से वह प्रगति करता है।

जैसे वृक्ष तो बहुत हैं लेकिन चंदन के वृक्ष कहीं-कहीं पर ही होते हैं। ऐसे ही मनुष्य तो बहुत हैं लेकिन ज्ञानी महापुरुष कहीं-कहीं पर ही होते हैं। ऐसे ज्ञानवानों के संग से हमारा चित्त शांत और पवित्र होता है एवं धीरे-धीरे उस चित्त में आत्मज्ञान का प्रवेश होता है और आत्मज्ञान पाकर मनुष्य मुक्त हो जाता है। जिस तरह अग्नि में लोहा डालने से लोहा अग्निरूप हो जाता है, उसी तरह संत-समागम से मनुष्य संतों की अनुभूति को अपनी अनुभूति बना सकता है। ईश्वर की राह पर चलते हुए संतों को जो अनुभव हुए हैं, जैसा चिंतन करके उनको लाभ हुआ है ऐसे ही उनके अनुभवयुक्त वचनों को हम अपने चिंतन का विषय बनाकर इस राह की यात्रा करके अपना कल्याण कर सकते हैं। ❀

महर्षि कर्दम एवं देवहूति का दिव्य चरित्र

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

[गतांक का शेष]

कुछ समय बीत जाने पर देवहूति के गर्भ से भगवान कपिल प्रगट हुए। इसी समय कर्दमजी के उस आश्रम में मरीचि आदि मुनियों सहित श्री ब्रह्माजी आये एवं कर्दमजी से बोले : ''वत्स! प्रिय कर्दम! तुमने मेरा सम्मान करते हुए मेरी आज्ञा का पालन किया है। उससे तुम्हारे द्वारा निष्कपट भाव से की गई मेरी पूजा संपन्न हुई है। बेटा! तुम्हारी ये सुन्दर कन्याएँ अपने वंशों द्वारा इस सृष्टि को अनेक प्रकार से बढ़ायेंगी। अब तुम इन मरीचि आदि मुनिवरों को इनके स्वभाव और रुचि के अनुसार अपनी कन्याएँ समर्पित करो और संसार में अपना यश फैलाओ।''

"आसक्ति कभी न खत्म होनेवाला पाश है, माँ! लेकिन वह आसक्ति अगर संत-महापुरुष के प्रति हो जाए तो मुक्तिदायिनी है।"

इस प्रकार कहकर ब्रह्माजी ब्रह्मलोक चले गये। ब्रह्माजी के चले जाने पर कर्दम ऋषि ने उनकी आज्ञा के अनुसार मरीचि आदि प्रजापतियों के साथ अपनी कन्याओं का विधिपूर्वक विवाह कर दिया। उन्होंने अपनी 'कला' नाम की कन्या का विवाह मरीचि के साथ किया। 'अनसूया' का कन्यादान अत्रि ऋषि को किया, जिनके यहाँ भगवान दत्तात्रेय अवतरित हुए। 'श्रद्धा' नाम की तीसरी कन्या अंगिरा ऋषि को एवं चौथी कन्या 'हविर्भू' पुलस्त्य ऋषि को समर्पित की। पाँचवीं कन्या 'गति' को पुलह ऋषि के साथ, छठी कन्या 'क्रिया' को क्रतु ऋषि के साथ और सातवीं कन्या 'ख्याति' को भृगु ऋषि के साथ ब्याह दिया। आठवीं कन्या 'अरुन्धती' महर्षि वशिष्ठजी को समर्पित किया और नौवीं कन्या 'शांति' का कन्यादान अथर्वा ऋषि को किया।

फिर कर्दमजी ने उन विवाहित ऋषियों का उनकी पत्नियों सहित खूब सत्कार किया। प्रसंग सम्पन्न हो जाने पर वे सब कर्दमजी की आज्ञा लेकर अति आनंदपूर्वक अपने-अपने आश्रमों को चले गये।

कर्दमजी ने देखा कि उनके यहाँ साक्षात् देवाधिदेव श्रीहरि ने ही अवतार लिया है। वे एकान्त में उनके पास गये और उन्हें प्रणाम करके कहने लगे :

''हे प्रभो! आप वास्तव में अपने भक्तों का मान बढ़ानेवाले हैं। समय-समय पर अपना प्रकाश, अपना ज्ञानामृत मानव जाति को देने के लिए अवतरित होनेवाले हे नारायण! आपको मेरा नमस्कार है! आपने अपने वचनों को सत्य करने और सांख्ययोग का उपदेश करने के लिए ही मेरे यहाँ अवतार लिया है। प्रभो! आपकी कृपा से मैं तीनों ऋणों से मुक्त हो गया हूँ और मेरे सभी मनोरथ पूर्ण हो चुके हैं। अब मैं संन्यास मार्ग को ग्रहण कर आपके व्यापक ब्रह्मस्वरूप का चिन्तन करते हुए शोकरहित होकर विचरना चाहता हूँ। अब आप मुझे आज्ञा दीजिए ताकि मैं आपके वास्तविक शुद्ध स्वरूप में विश्रांति पा सकूँ।''

कितना विवेक है! कितना वैराग्य है! ऐसा

विमान बनाने का सामर्थ्य कि जिसकी कल्पना तक आज के बिचारे वैज्ञानिक नहीं कर सकते ! इतनी ऊँचाई पर पहुँचे हुए थे, फिर भी ऐसे सुख को उन्होंने छोड़ दिया। घर में कपिल भगवान का अवतार हुआ है... वह भगवान का साकार विग्रह है और वह विग्रह जिससे दिखता है उस निराकार नारायण में प्रतिष्ठित होने के लिए कर्दम ऋषि भगवान को प्रणाम करके एकान्त में चले गये।

देवहूति का मन उदास था, फिर भी थोड़ी तसल्ली थी कि कपिल भगवान साथ में हैं। इसी तरह थोड़ा समय बीता और एक दिन देवहूति ने कपिल भगवान से कहा :

''प्रभो ! मैंने अपने जीवन का बहुत सारा समय संसार के चक्र को चलाने का निमित्त बनने में, संसार के प्रपंच में गँवा दिया। अब मुझे आप उपदेश दीजिए ताकि मैं मुक्ति का प्रसाद पा लूँ।''

भगवान कपिल ने माता देवहूति को भक्तिमार्ग का उपदेश देते हुए कहा : ''जो प्राणिमात्र में मुझ अन्तर्यामी का अनादर कर देता है, मुझको नहीं देखता है और बड़ी-बड़ी पूजा की सामग्रियों से मंदिर में या घर में मेरी पूजा करता है उसकी पूजा मैं स्वीकार नहीं करता। जिन मनुष्य के रूप में मैं बैठा हुआ हूँ उनका तो अनादर करता है, उनको तो दुःख देता है और फिर मेरे आगे सामग्रियों का भोग लगाता है ऐसे व्यक्ति से मैं संतुष्ट नहीं होता। किन्तु जो प्राणिमात्र के अंदर छुपे हुए मुझ नारायण को, मुझ ब्रह्म को पूजता है, माँ ! वह मुझे अत्यंत प्रिय है।

आसक्ति कभी न खत्म होनेवाला पाश है, माँ ! लेकिन वह आसक्ति अगर संत-महापुरुष के प्रति हो जाए तो मुक्तिदायिनी है।''

(क्रमशः)

भक्ति रसायन

भगवान भक्त के आधीन

❊ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❊

श्रीमद्भागवत के नवम स्कंध में एक प्रसंग आता है :

राजा अम्बरीष बड़े भाग्यवान् एवं भगवत्परायण थे। उनकी अनन्य प्रेममयी भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान ने उनकी रक्षा के लिए सुदर्शन चक्र को नियुक्त कर दिया था। राजा अम्बरीष की पत्नी भी उन्हीं के समान धर्मशील, संसार से विरक्त एवं भक्तिपरायणा थीं।

यदि मनुष्य सब कुछ छोड़कर अनन्य भाव से केवल परमात्मा की ही शरण लेता है तो भगवान उसकी सर्व प्रकार से रक्षा करते हैं। जरूरत है तो बस, अनन्य भाव से परमात्मा को भजने की।

राजा अम्बरीष एकादशी-व्रत की महिमा जानते थे। एकादशी का उपवास बड़ा पुण्यदायी एवं बड़े-बड़े पापों का नाशक है, मनोवांछित फल प्रदान करनेवाला है। राजा अम्बरीष ने भी विधिसहित एकादशी का उपवास किया एवं ब्राह्मणों से आज्ञा लेकर द्वादशी के दिन व्रत का पारणा करने की तैयारी की। उसी समय दुर्वासाजी वहाँ पधारे। राजा अम्बरीष ने दुर्वासाजी का पूजन किया एवं उनके चरणों में प्रणाम करके भोजन के लिए प्रार्थना की।

दुर्वासाजी ने अम्बरीष की प्रार्थना स्वीकार

कर ली एवं स्नान के लिए नदी तट पर चले गये। वहाँ दुर्वासाजी को बहुत देर हो गयी। यहाँ द्वादशी केवल घड़ी भर शेष रह गयी थी। राजा अम्बरीष ने ब्राह्मणों से परामर्श किया एवं केवल जल से पारणा कर लिया।

दुर्वासाजी नदी तट से लौट आये एवं बोले :

''एकादशी का पारणा मेरे आने पर करनेवाले थे लेकिन लगता है तुम कुछ खा-पीकर बैठे हो।''

अम्बरीष : ''हाँ, महाराज ! मैंने जल पीकर उपवास खोल दिया है।''

दुर्वासाजी क्रोधित हो उठे एवं बोले :

''दुर्वासा की अवज्ञा का फल क्या होता है, देख लो।''

यह कहते-कहते उन्होंने अपनी जटा में से एक बाल उखाड़ा और मंत्रशक्ति से उससे एक कृत्या उत्पन्न की। कृत्या ज्यों-ही अम्बरीष पर प्रहार करने को उद्यत हुई, त्यों-ही सुदर्शन चक्र ने कृत्या को जलाकर राख का ढेर कर दिया एवं दुर्वासाजी के पीछे पड़ा।

सुदर्शन चक्र को पीछे आता देख दुर्वासाजी भागे एवं गये इन्द्र के पास। इन्द्र ने कहा :

''भगवान के सुदर्शन चक्र से मैं आपकी रक्षा नहीं कर सकता।''

कुबेर, वरुण आदि ने भी मना कर दिया। यहाँ तक कि ब्रह्माजी एवं शिवजी ने भी इन्कार कर दिया। आखिर दुर्वासाजी भगवान नारायण के पास गये एवं रक्षा के लिए प्रार्थना की।

भगवान नारायण ने कहा :

''मेरी अवज्ञा की हो तो मैं क्षमा करूँ लेकिन मेरे भक्त की अवज्ञा की है अतः मेरे सुदर्शन को मैं नहीं रोक सकता। आप मेरे उस भक्त के ही पास जाइए।

मैं सर्वथा भक्तों के आधीन हूँ। मुझमें तनिक भी स्वतंत्रता नहीं है। मेरे सीधे-सादे सरल भक्तों ने मेरे हृदय को अपने वश में कर रखा है। भक्तजन मुझसे प्यार करते हैं और मैं उनसे।

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतंत्र इव द्विज।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः॥

(श्रीमद्भागवत : ९.५.६३)

हे दुर्वासाजी ! आपका कल्याण हो। आप नाभागनंदन परम भाग्यशाली राजा अम्बरीष के पास जाइये और उनसे क्षमा माँगिये, तब आपको शांति मिलेगी।''

भगवान नारायण ने कहा : ''मैं सर्वथा भक्तों के आधीन हूँ। मुझमें तनिक भी स्वतंत्रता नहीं है। मेरे सीधे-सादे सरल भक्तों ने मेरे हृदय को अपने वश में कर रखा है। भक्तजन मुझसे प्यार करते हैं और मैं उनसे।''

भगवान की आज्ञा पाकर दुर्वासाजी अम्बरीष के पास आये एवं उनसे क्षमा माँगी। राजा अम्बरीष ने सुदर्शन चक्र से प्रार्थना की तब सुदर्शन चक्र शांत हो गया। दुर्वासाजी चक्र की आग से मुक्त हो गये एवं उन्होंने अम्बरीष को अनेकानेक आशीर्वाद दिये।

कैसी है भक्त की महिमा ! स्वयं भगवान भक्त के आधीन हो जाते हैं।

यदि मनुष्य सब कुछ छोड़कर अनन्य भाव से केवल परमात्मा की ही शरण लेता है तो भगवान उसकी सर्व प्रकार से रक्षा करते हैं। जरूरत है तो बस, अनन्य भाव से परमात्मा को भजने की।

हे व्यष्टिरूप अनन्त ! आप अपने पैरों पर खड़े रहने का साहस करो, समस्त विश्व का बोझ आप खिलौने की तरह उठा लोगे। ['जीवन रसायन' से]

भारत : ज्ञानपूर्ण गुलदस्ता

❊ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❊

भारत हमेशा ज्ञान का पुजारी रहा है। पुराणों में जो कहा गया है वही आपके सिर पर थोप दिया जाय, ऐसा भारतीय संस्कृति नहीं मानती है। भारतीय संस्कृति के संस्थापक कोई पीर, पैगंबर या कोई एक ऋषि नहीं हैं। अगर एक ही ऋषि ने भारतीय संस्कृति की स्थापना की होती या एक ही काल में सब ऋषि हो गये होते और उनके द्वारा यह संस्कृति अस्तित्व में आती तो ज्ञान की इतिश्री हो गयी होती, लेकिन ऐसा नहीं हुआ।

भारत में कई ऋषि-मुनि हो गये। अलग-अलग कालों में अलग-अलग ऋषि हुए। मनु महाराज कहते हैं : ''अगर मेरा ज्ञान तर्कसंगत है और तुम्हारे हित का है तो उसका आदर करो, नहीं तो मत मानो।'' श्रीकृष्ण ने अर्जुन को पूरी गीता सुना दी और फिर अर्जुन से कहा : **''यथेच्छसि तथा कुरु।** जैसी तुम्हारी इच्छा हो अर्थात् शुद्ध मति और हृदय दोनों के तालमेल से जो तुम्हें अच्छा लगे, वह तुम करो।''

ज्ञान का आदर जितना भारत देश ने किया है, उतना और किसीने नहीं किया है। हमारा भारत परम गहन ज्ञान की नींव पर खड़ा है। भले अभी हम थोड़ा-बहुत इसे भूल गये हैं, लेकिन यह ज्ञान और इस ज्ञान के देनेवाले गुरु अभी-भी इस देश में हैं। यह ज्ञान नष्ट नहीं हुआ है।

थोपने का काम भारतीय संस्कृति में नहीं है जबकि अन्य मजहबवाले कहते हैं : ''जो लिखा है, बस उसे मान लो।'' ...लेकिन ज्ञान किसी चारदीवारी जेल की तरह किताबों में कैद नहीं हो सकता। ज्ञान नित्य नवीन होता है, नित्य नवीन रस देता है, नित्य नवीन प्रकाश देता है।

हमारा ज्ञान कहता है कि सबमें आपका अपना-आपा परमेश्वर ज्यों-का-त्यों है। इसलिये भारतवासी जिस किसीको अपना बनाने में सफल हो जाते हैं, जिस किसी देश में, जिस किसी भाषावाले लोगों में आसानी से घुल-मिल जाते हैं। किसी देश में कोई मत चलता है, किसी देश में कोई धर्म चलता है लेकिन इस देश ने सबको स्वीकार किया, सबको अपने विचार कहने का मौका दिया। कणाद ऋषि कहते हैं कि 'सृष्टि परमाणुओं से बनी है...'- उनको भी मौका मिला। बुद्धवादी बोलते हैं कि 'क्षण-क्षण में सब नाश हो रहा है...'- उनको भी मौका मिला। भगवद्वादी बोलते हैं कि 'सृष्टि ईश्वर का संकल्प है...'- उनको भी मौका दिया गया।

जैसे भिन्न-भिन्न फूलों से गुलदस्ते की शोभा बढ़ती है, ऐसे ही जिस देश में भिन्न-भिन्न मत-मतांतर हैं वे उस देश की शोभा हैं, गरिमा हैं। विविधता के जगत में यह देश शाहनशाह है।

परदेश के लोग बोलते हैं : ''क्या तुम्हारे यहाँ इतने भगवान हैं- भगवान शंकर, भगवान कृष्ण, भगवान राम ?''

उन लोगों को पता नहीं कि शंकराचार्य ने तो पाणिनि मुनि को भी भगवान कहा क्योंकि वे ज्ञान के उपासक थे। ज्ञान ही भगवान है। वे ज्ञान में रम गये थे, विद्या में रम गये थे। सरस्वती को भी यहाँ भगवती मानते हैं। भगवती को अंबा और दुर्गा के रूप में भी मानते हैं। यहाँ **'सत्यं ज्ञानं अनंतं ब्रह्म'** की पूजा होती है।

युद्ध के मैदान में भी धर्म को साथ रखो, बाजार में और व्यापार में भी ज्ञान को, समझ को साथ रखो। घर-परिवार में भी समझ को साथ रखो, ज्ञान का आदर करो। भगवान को साथ रखो।

हमारा मन बहुआयामी है, विविधता पसंद करता है। दो मीटर कपड़ा खरीदना होता है तब भी चार दुकानों में घूमते हैं, दो-चार डिजाइनें देखते हैं फिर खरीदते हैं। ...तो जिसको अपना सर्वस्व देकर पाना है उसे चाहे जो रूप पसंद आये, उसी रूप में भजें इसमें बुरा क्या है ? उस अनंत को पाने का एक ही पंथ और एक ही ग्रंथ होगा क्या ? अनेक रूपों में उसीकी उपासना करते हैं और अनेक ग्रंथों में उसीके ज्ञान का विवरण है। वेद भी हैं, उपनिषद् भी हैं, ब्रह्मसूत्र भी हैं, गीता भी है। और भी कई ग्रंथ हैं। दुनिया की ५७८ भाषाओं में श्रीमद्भगवद्गीता के अनुवाद हो चुके हैं। जिस समय के ग्रंथ में जो कहा गया हो, वह उस समय के लोगों के लिये उनका अपना रहा होगा। इस समय जो कहा जाय वह इस जमाने के लोग और कहनेवाले की क्षमता के अनुसार होगा।

ज्ञान किसी चारदीवारी जेल की तरह किताबों में कैद नहीं हो सकता। ज्ञान नित्य नवीन होता है, नित्य नवीन रस देता है, नित्य नवीन प्रकाश देता है।

किसी ग्रंथ में लिखा होगा कि : 'ब्रह्मचारी को नंगे पैर घूमना चाहिए। ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। धरती पर सोना चाहिए।'

आचार्य विनोबाजी ने लिखा है कि : ''ऐसे ब्रह्मचर्य व्रत का पालन मैंने किया है। यह सब जब लिखा गया था, तब गुरुकुल नदी के किनारे होते थे। चारों ओर हरियाली होती थी, डामर की सड़कें नहीं थीं। इतनी भाग-दौड़ की जिन्दगी नहीं थी। अब की परिस्थिति कुछ और है। मैं नंगे पैर सड़कों पर घूमा किन्तु फायदा होने की जगह नुकसान हुआ। मेरी आँखो पर बहुत बुरा असर पड़ा। तब मुझे पता चला कि उस समय की परिस्थिति में और इस समय की परिस्थिति में फर्क है।''

विनोबाजी ने अपनी गलती को स्वीकार करके ज्ञान के नवीन प्रकाश को स्वीकार किया।

जिस किसी मत, पंथ, विचार में जितनी सच्चाई होगी, व्यापकता होगी, जितना वह **'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय'** होगा उतना उसका प्रचार होगा, उतना वह टिकेगा।

लोगों को डर लगता है कि : 'हमारे मत-पंथ के लिये कुछ न कहो, लोगों की श्रद्धा टूट जाएगी...'

टी.बी. के मरीज को जरा-सी हवा लगे तो 'बीमार हो जाऊँगा...' ऐसा मरने का भय उसे सदा रहता है। ऐसे शव को लेकर घूमने की जरूरत भी क्या है ? जरा-से आँधी-तूफान जिसको गिरा देते हैं ऐसे वृक्ष को पहले से ही गिरा हुआ समझो।

ऐसे ही जिस मत या पंथ को विचार की कसौटी गिरा देती है वह तो पहले से ही खोखला है। जो मत या विचार किसी कसौटी पर खरा उतरता है वही सच्चा है। भारतीय संस्कृति ने इस

बात को सदा स्वीकार किया है। ऐसे शुद्ध, बलिष्ठ, उन्नत विचारों का आदर करना चाहिए और ज्ञानपूर्वक जीवन जीना चाहिए। जो खुराक बच्चे के लिये बहुत उपयोगी है वह पहलवान के लिये व्यर्थ है और जो पहलवान के लिये हितकारी है वह बच्चे के लिये व्यर्थ है। प्रत्येक के लिये जो उचित हो, वैसा ही आहार-व्यवहार होना चाहिए। उसमें साधारण समझ का उपयोग करना चाहिए।

जिस मत या पंथ को विचार की कसौटी गिरा देती है वह तो पहले से ही खोखला है। जो मत या विचार किसी कसौटी पर खरा उतरता है वही सच्चा है। भारतीय संस्कृति ने इस बात को सदा स्वीकार किया है।

यस्य ज्ञानमयं तपः...

'आस्तिक बनो। धर्म को साथ लो।' इसका मतलब क्या ? केवल पूजा-कक्ष में बैठना ही धर्म नहीं है। यज्ञ की वेदी पर ही धर्म संपन्न नहीं होता है। युद्ध के मैदान में भी धर्म को साथ रखो, ज्ञान को साथ रखो, समझ को साथ रखो। उचित-अनुचित के विवेक को जागृत रखो। बाजार में और व्यापार में भी ज्ञान को, समझ को साथ रखो। घर-परिवार में भी समझ को साथ रखो, ज्ञान का आदर करो। सोते-जागते, खाते-पीते, उठते-बैठते भी धर्म को, ज्ञान को साथ रखो, भगवान को साथ रखो। भगवान को मत भूलो, ज्ञान को मत भूलो।

ज्ञान का आदर जितना भारत देश ने किया है, उतना और किसीने नहीं किया है।

रवीन्द्रनाथ टाकुर ने 'शांति निकेतन' की स्थापना की। दुनिया के सभी धर्मों के ऋषियों का, उनके ज्ञान का आदर किया। यहाँ एमर्सन और महात्मा थोरो जैसे पश्चिम के विचारकों के ज्ञान का भी आदर किया गया है और एकनाथ महाराज, तुकाराम महाराज, ऋषि दयानंदजी, नानकजी, कबीरजी, लीलाशाहजी महाराज के ज्ञान का भी आदर किया गया है। चाहे आईन्स्टीन जैसे वैज्ञानिक हों, चाहे कोई प्रकृति-प्रेमी हो या समाजसेवक हो, जो भी **'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय'** अपने को समर्पित कर देते हैं, ऐसे व्यक्तियों का सत्कार भारतवासियों ने किया है, चाहे वे देशी हों या विदेशी हों। भारत ने जितने अन्य मत-पंथ-मजहबों को गले लगाया है ऐसा और किसी देश ने नहीं किया है। कुछ देश तो ऐसे हैं जहाँ आप मंदिर नहीं बना सकते। उनको भी हम कहते हैं कि आप हमारे हैं क्योंकि हमारी संस्कृति ने हमें यही सिखाया है कि सबके मूल में वही एक **'सत्यं ज्ञानं अनंतं ब्रह्म'** है। हम सहिष्णु हैं, उदार हैं लेकिन सहिष्णुता और उदारता के नाम पर कायरता को पोषण देनेवाले नहीं हैं। भगवान श्रीकृष्ण भी कहते हैं :

क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप।
(गीता : २.३)

'दुष्टों को तपानेवाले हे परंतप ! अपने हृदय की क्षुद्र दुर्बलता को त्यागकर उठो।'

यह ज्ञान का आदर है। हमारा भारत परम गहन ज्ञान की नींव पर खड़ा है। भले अभी हम थोड़ा-बहुत इसे भूल गये हैं, लेकिन यह ज्ञान और इस ज्ञान के देनेवाले गुरु अभी-भी इस देश में हैं। यह ज्ञान नष्ट नहीं हुआ है। यह फिर से पनपेगा और भारत आध्यात्मिकता के शिखर पर पहुँचकर पुनः विश्व का गुरु बनेगा, बिल्कुल पक्की बात है।

महत्त्वपूर्ण निवेदन : सदस्यों के डाक पते में परिवर्तन अगले अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा। जो सदस्य ८४ वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया अक्तूबर के अंत तक अपना नया पता भिजवा दें।

योगसिद्ध ब्रह्मलीन ब्रह्मनिष्ठ
प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद स्वामी श्री

लीलाशाहजी महाराज : एक दिव्य विभूति

[गतांक का शेष]

मैं तो चार-पाँच मिनट में ही स्नान करके तुरंत वापस आ गया। मैंने आकर पूर्व दिशा का दरवाजा खोला और पूज्यश्री से कहा : ''रवि महाराज का उदय हुआ है।''

पूज्यश्री को सूर्य की सुबह की सुनहरी किरणों से अपार प्रेम था। ४ तारीख को प्रातः ७-२० के समय स्वामीजी ने खुश होकर सूर्यनारायण को आखिरी प्रणाम किये। पाटण वगैरह से डॉक्टर आ गये। उन लोगों ने अपने-अपने प्रयत्न शुरु किये। ...परंतु इस मिथ्या संसार में ऐसा कोई नहीं जन्मा जिसका पंचभौतिक शरीर हमेशा के लिए रहा हो। डॉक्टरों के प्रयत्न सफल नहीं हुए।

'महापुरुषों के चरणों की रज से खुद को स्नान कराये बिना अन्य कोई भी साधन से यह परमात्मज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता।'

अंतिम समय में पूज्यश्री ने एक अलौकिक दृष्टि से सबकी ओर देखा। उसमें भी संसार के प्रति उनकी कृपा, कल्याण की भावना दृष्टिगोचर हो रही थी। करुणा से भरी वे आँखें प्रेम एवं परोपकार का पैगाम दे रही थीं।

मेरे गुरुदेव का दिव्य वपु इस पृथ्वी पर से विदा ले रहा था तब मेरी गोद में ही सिर रखकर उन्होंने आखिरी श्वास लिए थे। मानों, उनकी आँखें कह रही थीं :

''ले... ले... सभी कुछ ले ले...''

आँखे बंद होने से पूर्व वे आँखें बहुत बरसी थीं। उस समय भी वे मुझे कुछ-न-कुछ सिखा रहे थे कि :

''देख, यह सब शरीर को हो रहा है। मुझे कुछ नहीं होता। यह तो प्रारब्ध है... देख, ९३ वर्ष का मेरा सपना पूरा होने को आया है... मैं नहीं मरता। देख बेटा ! सपना पूरा हो गया। खेल पूरा हो गया। अब मैं जाता हूँ। देख, लीलाशाह बापू नहीं मरते हैं, उसी प्रकार तुम भी नहीं मरते हो।''

उनकी मृत्यु भी उनके जीवन जितनी ही भव्य थी। आत्मध्यान में मग्न रहकर ४ नवम्बर, १९७३ में रविवार के दिन सुबह ८-४० बजे, ठीक ९३ वर्ष एवं साढ़े सात महीने पूरे करके पूज्यश्री ब्रह्मलीन हो गये। उनकी जीवन-लीला समाप्त हुई।

बृहदारण्यक उपनिषद् में आता है कि : **न तस्य प्राणाः उत्क्रामन्ति ब्रह्मैव सन्ब्रह्माप्येति।**

'उन ब्रह्मवेत्ता के प्राण उत्क्रमण नहीं करते।

वे ब्रह्म होने से ब्रह्म में ही लीन होते हैं।'

उनके देहांत के दुःखद समाचार सभी जगह फैल गये। उनके अंतिम दर्शन के लिए अलग-अलग जगहों से हजारों की संख्या में भाविक भक्त आये। सभी चाहक गहरे शोक में डूब गये। कष्ट की परवाह किये बिना रामधुन गाते-गाते वे लोग पालनपुर से डीसा होकर आदिपुर में उनकी समाधि के अंतिम क्षण तक उपस्थित रहे।

अपने प्यारे गुरु महाराज के विरह में श्रद्धालु भक्त, प्रेमी चाहक एवं शिष्यों की आँखो से अश्रुधारा बरस रही थी किन्तु गुरुदेव की आत्मा मानों उन्हें पुकारकर आश्वासन दे रही थी कि :

करे कूचु विया, सभेइ संसार मू।
पीर पैगम्बर ओलीया जिन पंहिंजा पंथ कया ॥
ग्यानी ध्यानी गृस्ती, सामी पन्धु पिया।
सभी ग़ेबु थिया तो छा समुझियो पाण खे ?

प्रत्येक देहधारी को जन्म, बालपन, युवानी से गुजरकर बुढ़ापे के अंत में शरीर छोड़ना ही है। कोई भी पीर, पैगम्बर, औलिया, फकीर, ऋषि-मुनि या भगवान का अवतार इसमें अपवाद नहीं है। आत्मा तो अमर है, देह नाशवंत है।

तत्त्वदृष्टि से देखें तो महात्माओं के जीवन का हिसाब भला हम कैसे लगा सकते हैं ? मृत्यु को मारकर जो चिरंजीवी हुए हैं उनका भला जन्म और मृत्यु कहाँ ?

जीवन्मुक्त महात्मा लोककल्याण के लिए समय-समय पर इस पृथ्वी पर अवतार धारण करते हैं। अपने भक्तों एवं अज्ञानी जीवों के लिए कल्याणकारी कार्य करके जहाँ-के-तहाँ ब्रह्मलीन हो जाते हैं।

"देख, यह सब शरीर को हो रहा है। मुझे कुछ नहीं होता। यह तो प्रारब्ध है... देख, ९३ वर्ष का मेरा सपना पूरा होने को आया है... मैं नहीं मरता। देख बेटा! सपना पूरा हो गया। खेल पूरा हो गया। अब मैं जाता हूँ। देख, लीलाशाह बापू नहीं मरते हैं, उसी प्रकार तुम भी नहीं मरते हो।"

पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज अभी स्थूल शरीर के रूप में इस संसार में भले नहीं हैं, किन्तु उनका नाम सदैव अमर रहेगा।

अभी उनकी स्मृति में कई शहरों, गाँवों में अलग-अलग सत्कार्य केन्द्र चल रहे हैं। देश-विदेश में उनका जन्मदिन उत्साह के साथ मनाया जाता है। आदिपुर में उनके समाधि-स्थल पर उनकी पुण्यतिथि तीन-तीन दिन तक खूब धूमधाम से मनायी जाती है जिसमें दूर-दूर से कई प्रेमी भक्त आते हैं।

ऐसे थे कर्मनिष्ठ, योगी, ज्ञानी, समाजसेवक, देशप्रेमी महापुरुष हमारे प्यारे सद्गुरुदेव स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज ! श्रीमद्भागवत में जड़भरतजी रहूगण राजा के सामने ऐसे महापुरुषों की महिमा का गान करते हुए कहते हैं :

रहूगणैतत्तपसा न याति
न चेज्यया निर्वपणाद् गृहाद्वा।
न छन्दसा नैव जलाग्निसूर्यै-
र्विना महत्पादरजोऽभिषेकम् ॥

'हे रहूगण ! महापुरुषों के चरणों की रज से खुद को स्नान कराये बिना केवल तप-यज्ञादि वैदिक कर्म, अन्नादि का दान, अतिथिसेवा, दीनसेवा वगैरह गृहस्थोचित धर्मानुष्ठान, वेदाध्ययन अथवा जल, अग्नि या सूर्य की उपासना वगैरह कोई भी साधन से यह परमात्मज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता।'

ऐसी दिव्य है ब्रह्मज्ञानी महापुरुषों की महिमा !

(क्रमशः)

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

आत्मविजय पा लो

[विजयादशमी दिनांक : १९ अक्तूबर '९९]

अधर्म पर धर्म की, असत्य पर सत्य की एवं दुराचार पर सदाचार की विजय का पर्व है विजयादशमी। इसी दिन भगवान श्रीराम ने दुष्ट दशानन का वध करके पृथ्वी का भार हल्का किया था। इसी दिन माँ दुर्गा ने महिषासुर का वध किया था। इसी दिन रघुराजा ने कुबेर भण्डारी पर अपना तीर साधकर स्वर्णमुद्राओं की वर्षा करवायी थी। इसी दिन समर्थ रामदास के प्यारे शिष्य शिवाजी ने युद्ध का आरंभ किया था।

> *जैसे श्रीराम ने रावण पर, माँ दुर्गा ने महिषासुर पर, शिवाजी ने मुगलों पर विजय प्राप्त की थी वैसे ही आप भी अपने चित्त में छुपी आसुरी वृत्तियों पर विजय प्राप्त कर परमात्मा को पा लो।*

इस प्रकार विजयादशमी का यह पर्व विजय का पर्व है जो आपको भी यही संदेश देता है कि आप भी वास्तविक विजय प्राप्त कर लो। जैसे श्रीराम ने रावण पर, माँ दुर्गा ने महिषासुर पर, शिवाजी ने मुगलों पर विजय प्राप्त की थी वैसे ही आप भी अपने चित्त में छुपी आसुरी वृत्तियों, धारणाओं पर विजय प्राप्त कर परमात्मा को पा लो तो आपकी वास्तविक विजय हो जायेगी।

आप दृढ़ निश्चय से अपनी शक्ति को उस परम सत्य परमात्मा को पाने में लगा दो। 'लोग क्या कहेंगे ? साधना करने पर प्रभु मिलेंगे कि नहीं ? यह काम करूँगा तो होगा कि नहीं ?' इस प्रकार के संकल्प-विकल्प न करके आज के दिन दृढ़ निश्चय करो कि : 'मेरे अंदर आसुरी वृत्तिरूपी जो रावण है उस पर विजय पाकर ही रहूँगा।' ॐकार का गुँजन कर इष्टमंत्र का जप-अनुष्ठान बढ़ाते जाओ। इस प्रकार का दृढ़ निश्चय करके आसुरी वृत्तियों को निकालने के लिए कटिबद्ध हो गये तो आपके अंदर परमात्मतत्त्व की ज्ञानशक्ति प्रगट होने लगेगी और यही तो परम विजय है।

किसी बाह्य शत्रु को मार डालना यह तो तुच्छ विजय है, युद्ध करके बाह्य वस्तु को प्राप्त कर लेना यह तो सामाजिक श्रेय है लेकिन सच पूछो तो... किसीके सब बाह्य शत्रु मर जायें एवं सारी बाह्य वस्तुएँ उसे मिल जायें फिर भी जब तक उसने अपनी भीतरी आसुरी वृत्तियों पर विजय नहीं पायी, तब तक सदा के लिए वह विजयी नहीं माना जाता। जब वह आसुरी वृत्तियों पर विजय पाकर दैवी संपदा का स्वामी हो जाता है तभी वास्तव में उसकी विजय मानी जाती है। आप भी 'विजयादशमी' के पर्व पर इसी प्रकार का संकल्प करो।

आज हम इतने बहिर्मुख हो गये हैं कि बाह्य सफलताओं को, बाह्य विजय को ही असली विजय मानने लगे हैं। आज तक कई 'विजयादशमी' आयीं और चली गयीं फिर भी हमें वास्तविक विजय नहीं मिल पायी। धंधे-

व्यापार में थोड़ी विजय मिल गयी... राज्य में थोड़ी विजय मिल गयी... यश में थोड़ी विजय मिल गयी... और हम उसीमें अपनी विजय मानकर रुक गये किन्तु भीतर मौत का भय, प्रतिकूलता का भय, विरोध का भय, बीमारी आदि का भय जारी ही रहता है।

यह सच्ची विजय नहीं है। सच्ची विजय तो यह है कि आपको जगत के लोग तो क्या, तैंतीस करोड़ देवता भी मिलकर परास्त न कर सकें- ऐसी विजय को तुम उपलब्ध हो जाओ और वह विजय है आत्मज्ञान की प्राप्ति।

लौकिक विजय वहीं होती है जहाँ पुरुषार्थ और चेतना होती है, ऐसे ही आध्यात्मिक विजय भी वहीं होती है जहाँ सूक्ष्म विचार होते हैं, चित्त की शांत दशा होती है एवं प्रबल पुरुषार्थ होता है।

आशावान् च पुरुषार्थी प्रसन्नहृदयः।

जो आशावान् है, पुरुषार्थी है एवं प्रसन्नहृदय है, वही पुरुष विजयी होता है।

जो निराशावादी है, खिन्नचित्त है, आलसी या प्रमादी है, वह विजय के करीब पहुँचकर भी पराजित हो जाता है लेकिन जो उत्साही होता है, पुरुषार्थी होता है, वह हजार बार असफल होने पर भी कदम आगे रखता है और अंततः विजयी हो जाता है। आप भी परमात्मा से मिलने की आशा को कदापि न छोड़ना... अपना उत्साह, पुरुषार्थ कभी न छोड़ना। आशा, उत्साह एवं पुरुषार्थ जिसके जीवन में होगा वह अवश्य ही विजयी हो जायेगा।

'विजयादशमी' नवरात्रि के बाद आती है। जिसने पाँच ज्ञानेन्द्रियों (आँख, कान, नासिका, रसना और त्वचा) एवं चार अंतःकरण (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार) इन नौ पर विजय पा ली, उसकी विजयादशमी होकर ही रहती है। आप भी इसीको विजयादशमी का संदेश व उद्देश्य बनाओ।

जो भोगों में भटकता है, जो ऐहिक सुखों में उलझता है उसे भले दो ही बाहु नहीं, बीस बाहु हों, एक सिर ही नहीं, दस सिर हों, सोने की लंका बना सकता हो, स्वर्ग तक सीढ़ियाँ लगाने का बल रखता हो, कितना ही बलवान् हो, विद्वान् हो फिर भी भीतर से खोखला ही रह जाता है क्योंकि उसे भीतर का रस नहीं मिला। बाहर से भले कोई वल्कल पहने हुए दिखे, रीछ-भालू एवं बंदरों की तरह सीधा-सादा जीवनयापन करता हुआ दिखे फिर भी विजय उसीकी होती है क्योंकि वह सत्यस्वरूप आत्मसुख में स्थित होता है, इन्द्रियों का दास न रहकर इन्द्रियों का स्वामी बनता है।

जो भगवान श्रीरामचंद्रजी का अनुकरण करते हैं वे बाहर से सादगीपूर्ण होते हुए भी बड़ी ऊँचाइयों को छू लेते हैं और जो भाईजान रावणजी का अनुसरण करते हैं वे बलवान् और सत्तावान् होते हुए भी विनाश को प्राप्त होते हैं। जो श्रीराम का अनुकरण करते हैं वे आत्मारामी हो जाते हैं, आत्मतृप्त हो जाते हैं, धन्य-धन्य हो जाते हैं, मुक्तात्मा, जितात्मा हो जाते हैं। जो रावण का स्वभाव लेते हैं, काम को पोसते हैं, क्रोध को पोसते हैं, वे अकारण परेशान होते हैं, बेमौत मारे जाते हैं।

हजारों प्रतिकूलताओं में भी जो निराश नहीं होता, हजारों विरोधों में भी जो सत्य को नहीं छोड़ता, हजारों मुसीबतों में भी जो पुरुषार्थ को नहीं छोड़ता, वह अवश्य विजयी होता है और आपको विजयी होना ही है। लौकिक युद्ध के मैदान में तो कई विजेता हो सकते हैं लेकिन आपको तो उस युद्ध में विजयी होना है जिसमें बड़े-बड़े योद्धा भी हार गये। आपको तो ऐसे विजयी होना है जैसे पाँच साल की उम्र में ध्रुव, आठ साल की उम्र में रामी रामदास, शुकदेव व परीक्षित विजयी हो गये।

दुःख के प्रसंग में वे हिले नहीं और सुख के प्रसंग से प्रभावित नहीं हुए, यश के प्रसंग में वे हर्षित नहीं हुए एवं अपयश के प्रसंग में भी वे रुके नहीं, वरन् परमात्मा की मुलाकात के लिये अंतर्यात्रा करते ही रहे। इसीलिए लोगों ने ध्रुव को, प्रह्लाद को, शबरी को, जनक को, जाबल्य को श्रद्धा भरे हृदय से स्नेह किया, सत्कारा, नवाजा है।

उन लोगों ने समय की धारा में बहने की अपेक्षा सत्य में अपने पैर टिका दिये, परिस्थितियों की गुलामी में न बहकर परिस्थितियों को, अनुकूलता-प्रतिकूलताओं को खेलमात्र समझकर अपनी आत्मा में स्थिरता पा ली। ऐसे जो भी महापुरुष इस धरती पर हो गये हैं, उनके हाथ में भले सत्ता न रही हो फिर भी अनेक सत्तावान् उनके आगे सिर झुकाते रहे हैं। भले उनके पास धन न रहा हो लेकिन अनेक धनवान् उनसे कृपायाचना करते रहे हैं। भले उनके पास पहलवानों जैसा बाहुबल न रहा हो फिर भी बड़े-बड़े पहलवान उनके आगे अपना सिर झुकाकर सौभाग्य प्राप्त करते रहे हैं।

आध्यात्मिक विजय भी वहीं होती है जहाँ सूक्ष्म विचार होते हैं, चित्त की शांत दशा होती है एवं प्रबल पुरुषार्थ होता है।

जो आशावान् है, पुरुषार्थी है एवं प्रसन्नहृदय है, वही पुरुष विजयी होता है। जो निराशावादी है, खिन्नचित्त है, आलसी या प्रमादी है, वह विजय के करीब पहुँचकर भी पराजित हो जाता है।

जो धर्म पर चलते हैं, नीति पर चलते हैं, हिम्मतवान् हैं, उत्साही और पुरुषार्थी हैं, उन्हें परमात्मा का सहयोग मिलता रहता है। जो अनीति एवं अधर्म का सहारा लेता है उसका विनाश होकर ही रहता है, फिर भले ही वह सत्तावान् एवं धनवान् क्यों न हो? अनीति पर चलनेवाले रावण के पास बहुत धन था, सत्ता थी और बड़े-बड़े राक्षसों की विशाल सेना थी फिर भी धर्म एवं नीति पर चलनेवाले श्रीरामजी ने नन्हें-नन्हें वानर-भालुओं के सहयोग से ही उन पर विजय पा ली। जब नन्हें-नन्हें वानर-भालू बड़े-बड़े राक्षसों को मार सकते हैं तो आप कामनारूपी, अहंकाररूपी रावण को क्यों नहीं मार सकते? आप भी अवश्य उसे मार सकते हो लेकिन शर्त इतनी ही है कि आपमें उत्साह एवं पौरुष हो तथा आप नीति एवं धर्म पर अडिग रहो।

भले आज संसार में दुराचार बढ़ता हुआ नजर आता है, पाप प्रभावशाली दिखता है, फिर भी आप डरना नहीं। पांडवों के पास कुछ न था, केवल उत्साह था किन्तु वे सत्य एवं धर्म के पक्ष में थे तो विजयी हो गये। बंदरों के पास न तो सोने की लंका थी, न खाने के लिए विभिन्न पक्वान थे। वे सूखे-सूखे पत्ते एवं फूल-फल खाकर रहते थे फिर भी वे काम-क्रोध के अहंकाररूपी रावण के अनुगामी नहीं थे, संयम व सदाचाररूपी राम के अनुगामी थे तो बड़े-बड़े राक्षसों को हराने में भी सफल हो गये।

'विजयादशमी' आपको भी यही संदेश देती है कि अधर्म और अनीति चाहे कितनी भी बलवान् दिखे, फिर भी रुकना नहीं चाहिए, डरना नहीं चाहिए, निराश नहीं होना चाहिए, संगठित होकर बुद्धि एवं बलपूर्वक उसका लोहा लेना चाहिए। यदि ऐसा कर सके तो आपकी विजय निश्चित है। आपके शत्रु में बीस भुजाओं जितना बल हो, दस सिर जितनी समझ हो फिर भी यदि आप श्रीराम

से जुड़ते हो तो आपकी विजय निश्चित है। अपनी पाँच ज्ञानेन्द्रियों एवं चार अंतःकरण को उस रोम-रोम में रमनेवाले श्रीराम तत्त्व में लीन करके अज्ञान, अहंकार एवं कामरूपी रावण पर विजय प्राप्त कर लेंगे- यही विजयादशमी पर शुभ संकल्प करो।

वाल्मीकिजी द्वारा भगवान को बताये हुए घर

[वाल्मीकि जयंती दिनांक : २४ अक्तूबर '९९]

वनवास के समय भगवान श्रीराम माँ सीता एवं अनुज श्री लक्ष्मणजी के साथ वाल्मीकिजी के आश्रम में आये। महर्षि वाल्मीकिजी ने कन्दमूल-फलादि से उनका आतिथ्य-सत्कार किया। तत्पश्चात् श्रीराम ने अत्यंत विनम्रतापूर्वक महर्षि वाल्मीकिजी से अपने रहने योग्य स्थान के बारे में पूछा।

महर्षि वाल्मीकिजी श्रीराम की महिमा का वर्णन करते हुए बोले : ''आप पूछते हैं कि मैं कहाँ रहूँ ? परन्तु मैं यह पूछते हुए सकुचाता हूँ कि जहाँ आप न हों, वह स्थान बता दीजिए। फिर मैं आपके रहने के लिए स्थान बताऊँ।''

वाल्मीकिजी के रहस्ययुक्त वचनों को सुनकर श्रीरामजी मुस्कराये। फिर वाल्मीकिजी ने श्रीरामजी को सीताजी एवं लक्ष्मणजीसहित निवास करने के लिए स्थान बतलाये। वाल्मीकिजी ने उन स्थानों का जो वर्णन किया है वह मानवमात्र के लिए अनुकरणीय है क्योंकि उसमें उन सुन्दर साधनों का वर्णन किया गया है, जिनके द्वारा साधक अपने साध्य तत्त्व को, परमात्मा को अवश्य ही पा सकता है।

वाल्मीकिजी कहते हैं :

''जिनके कान समुद्र की भाँति आपकी सुंदर कथारूपी अनेकों सुंदर नदियों से निरंतर भरते रहते हैं, परन्तु कभी पूरे तृप्त नहीं होते, उनके हृदय आपके लिए सुंदर घर हैं।

जिन्होंने अपने नेत्रों को चातक बना रखा है, जो आपके दर्शनरूपी मेघ के लिये सदा लालायित रहते हैं तथा जो बड़ी-बड़ी नदियों, समुद्रों और झीलों का निरादर करते हैं और आपके सौन्दर्यरूपी मेघ के एक बूँद जल से सुखी हो जाते हैं, हे रघुनाथजी ! उन लोगों के हृदयरूपी सुखदायी भवनों में भाई लक्ष्मणजी और सीतासहित आप निवास कीजिए।

आपके यशरूपी निर्मल मानसरोवर में जिनकी जीभ हंसिनी बनी हुई आपके गुणसमूहरूपी मोतियों को चुगती रहती है, हे रामजी ! आप उनके हृदय में बसिये।

जिनकी नासिका प्रभु के पवित्र और सुगंधित (पुष्पादि) सुन्दर प्रसाद को नित्य आदर के साथ ग्रहण करती (सूँघती) है और जो आपको अर्पण करके भोजन करते हैं और आपके प्रसादरूप ही वस्त्राभूषण धारण करते हैं, जिनके मस्तक देवता, गुरु और ब्राह्मणों को देखकर बड़ी नम्रता के साथ प्रेमसहित झुक जाते हैं, जिनके हाथ नित्य

प्रभुचरणों की पूजा करते हैं और जिनके हृदय में प्रभु का ही भरोसा है दूसरा नहीं तथा जिनके चरण प्रभु के तीर्थों में चलकर जाते हैं, हे रामजी ! आप उनके मन में निवास कीजिए।

जो नित्य आपके रामनामरूप मंत्रराज को जपते हैं और परिवारसहित आपकी पूजा करते हैं, जो अनेकों प्रकार से तर्पण और हवन करते हैं तथा ब्राह्मणों को भोजन कराकर बहुत दान देते हैं तथा हृदय में गुरु को आपसे भी अधिक बड़ा जानकर सर्वभाव से सम्मान करके उनकी सेवा करते हैं और इन सब कर्मों का एकमात्र फल आपके श्रीचरणों की प्रीति ही चाहते हैं उन लोगों के मनरूपी मंदिरों में आप श्रीसीताजीसहित बसिये।

महर्षि वाल्मीकिजी बोले : "जिनके मस्तक देवता, गुरु और ब्राह्मणों को देखकर बड़े विनय के साथ प्रेमसहित झुक जाते हैं, हे रामजी ! आप उनके मन में निवास कीजिए।"

जिनको न काम, क्रोध, मद, अभिमान और मोह है, न लोभ है, न क्षोभ है, न राग है, न द्वेष है और न कपट, दंभ और माया ही है, हे रघुनाथ ! आप उनके हृदय में निवास कीजिए।

जो सबके प्रिय और सबका हित करनेवाले हैं, जिन्हें दुःख और सुख तथा प्रशंसा और निन्दा समान हैं, जो विचारकर सत्य और प्रिय वचन बोलते हैं तथा जो जागते-सोते आपकी ही शरण हैं और आपको छोड़कर जिनकी दूसरी कोई गति नहीं है, हे रामजी ! आप उनके मन में बसिये।

जो परायी स्त्री को उसे जन्म देनेवाली माता के समान मानते हैं और पराया धन जिन्हें विष से भी भारी लगता है, जो दूसरों की संपत्ति देखकर हर्षित होते हैं और विपत्ति देखकर विशेष रूप से दुःखी होते हैं तथा हे रामजी ! जिन्हें आप प्राणों के समान प्यारे हैं उनके मन आपके रहनेयोग्य शुभ भवन हैं।

हे तात ! जिनके स्वामी, सखा, पिता, माता और गुरु सब कुछ आप ही हैं, उनके मनरूपी मंदिर में आप दोनों भाई सीतासहित निवास कीजिए।

जो अवगुणों को छोड़कर सबके गुणों को ग्रहण करते हैं, ब्राह्मण और गौ के लिए संकट सहते हैं, नीति-निपुणता में जिनकी जगत में मर्यादा है, उनका सुंदर मन आपका घर है।

जो गुणों को आपका और दोषों को अपना समझते हैं, जिन्हें सब प्रकार से आपका ही भरोसा है और रामभक्त जिन्हें प्यारे लगते हैं उनके हृदय में आप सीतासहित निवास कीजिए।

जाति, पाँति, धन, धर्म, मान-बड़ाई, प्यारा परिवार और सुख देनेवाला घर- इन सबको छोड़कर जो केवल आपको ही हृदय में धारण किये रहते हैं, हे रघुनाथजी ! आप उनके हृदय में रहिए।

स्वर्ग, नरक और मोक्ष जिनकी दृष्टि में समान हैं क्योंकि वे सर्वत्र आपको ही देखते हैं और जो कर्म, वचन और मन से आपके दास हैं, हे रामजी ! आप उनके हृदय में डेरा डालिये।

जिनको कभी कुछ भी नहीं चाहिए और जिनका आपसे स्वाभाविक प्रेम है, आप उनके मन में निरंतर निवास कीजिए, वह आपका अपना घर है।"

इस प्रकार वाल्मीकिजी ने श्रीरामजी को निवास-स्थान बताये। वास्तव में यदि कोई वाल्मीकिजी द्वारा दर्शाये गये संकेतों के अनुसार अपना हृदय बना ले तो उस हृदय में हृदयेश्वर परमात्मा अवश्य निवास करने लगें।

वाल्मीकिजी के तीन अवतार हुए। 'श्रीयोगवाशिष्ठ महारामायण' के 'कागभुशुण्डी-वशिष्ठ संवाद' में वर्णन आता है। जो लोग

वाल्मीकिजी के नाम या और किसी नाम से समाज और संत के बीच विद्रोह फैलाकर आगेवानी चाहते हैं उनको वाल्मीकिजी के वचन ठीक से समझने चाहिए। वालिया में से वाल्मीकि बने वे वाल्मीकि या तीन बार वाल्मीकि आये वे वाल्मीकि ? आप कौन-से वाल्मीकि को मानकर विद्रोह फैलाना चाहते हैं ? कृपा करके आप महापुरुष के होकर महापुरुषों के प्रति स्नेह रखें और उनके अंतःकरण को समझें। विद्रोह करके या करवाके अपनेको, जाति को, समाज को खोखला न बनायें।

सभी समाजों की गहराई में रामजी, वाल्मीकिजी की आत्मा है। वाल्मीकिजी की समझ कितनी ऊँची है ! उनकी समझ सभी के लिए है, उनका ज्ञान सभी के लिए है। उनके ज्ञान का आदर करें, उनकी प्रेमदृष्टि का आदर करें। उनका नाम आगे रखकर विद्रोह का....

ॐ भगवान सबको सद्बुद्धि दे। देशवासी परस्पर मिलजुलकर रहें। सभी वर्ग, सभी जातियाँ इस विराट भारत माँ की संतानें हैं।

तुझमें राम मुझमें राम, सबमें राम समाया है।
कर लो सभी से प्यार जगत में, कोई नहीं पराया है॥
एक ही माँ के बच्चे हम सब, एक ही पिता हमारा है।
फिर भी ना जाने किस मूरख ने,
लड़ना तुम्हें सिखाया है...
भिड़ना-भिड़ाना तुम्हें सिखाया है।
बदला जमाना तुम भी बदलो, कलहं के कृत्य छोड़ो...
प्रेम से समाज को जोड़ो...
तुझमें राम मुझमें राम, सबमें राम समाया है।
कर लो सभी से प्यार जगत में, कोई नहीं पराया है॥

ॐ क्यों भैया ! समझ गये न !

हाथ में जल लें और आज से ही संकल्प करें कि ऐसे विद्रोह में आयेंगे नहीं और विद्रोह फैलायेंगे नहीं। ॐ... ॐ... ॐ... शांति...

जय वाल्मीकि ऋषि...

❊ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❊

त्याग भोग जाके नहीं...

प्रज्ञानंद स्वामी जीवन्मुक्त संत थे। एक बार विचरते-विचरते किसी नगर के बाहर द्वार पर उन्होंने अपना आसन जमाया। भिक्षा पाकर वे वहीं पर अपनी आत्ममस्ती में लेट गये और उन्हें नींद आ गयी।

दैवयोग से रात्रि में उस नगर के राजा का स्वर्गवास हो गया। नगर का नियम था कि राजा का निधन हो जाने पर हथिनी को सजाकर उसकी सूँड पर कलश रख दिया जाता था। जिसके ऊपर वह हथिनी कलश ढोल देती थी उसीको राजतिलक कर दिया जाता था।

नगर के कर्मचारियों ने नियमानुसार ऐसा आयोजन किया तो प्रातःकाल वह हथिनी नगर के द्वार पर आ गयी।

जो महात्मा अपने-आपमें तृप्त होते हैं उन्हें देखकर भक्त तो तृप्ति का अनुभव करते ही हैं लेकिन हाथी जैसे पशु भी उनसे आकर्षित होते हैं। हथिनी ने स्वामी प्रज्ञानंद पर कलश ढोल दिया। वजीरों ने कहा :

''स्वामीजी ! आप इस राज्य के राजा हो गये हैं।''

प्रज्ञानंद स्वामी : ''अच्छा... चलो।''

संत का राजतिलक हो गया। राजतिलक के पश्चात् मंत्री ने हाथ जोड़कर कहा :

''महाराज ! क्या आज्ञा है ?

प्रज्ञानंद स्वामी : ''देखो ! यह हमारी लंगोटी है, इसको ठीक से धो-धाकर रख दो और यह हमारा तुम्बा और टाट का आसन है। तीनों को ठीक से तिजोरी में रख दो।''

फिर आगे कहा :

''तुमने तो मुझे राजा बना दिया और मैंने तुम्हें मंत्री के रूप में स्वीकार भी किया। प्रजा का खून चूसकर भोगी बननेवाला बरबाद होता है और प्रजा की वस्तु प्रजा की सेवा में लगा देनेवाला आदमी प्रजा का भी प्यारा होता है और प्रजा के स्वामी परमात्मा का भी प्यारा हो जाता है। अतः मैं तो परमात्मा के ध्यान-भजन में मस्त रहूँगा और मुझे विश्वास है कि राज्य का कारोबार तुम लोग सँभाल लोगे। कोई आवश्यक समस्या हो तो पूछना, नहीं तो तुम्हीं सँभाल लेना।''

राज्य का दायित्व अपने ऊपर आने से और राजकार्य अपना लगने से मंत्रीगण बड़ी इत्मिनान से काम करने लगे और महात्मा अपने ब्रह्मानंद में मस्त रहने लगे। जहाँ लोग ध्यान-भजन में लगे रहते हैं वहाँ अगर तालाब में पानी नहीं है तो बादलों को वहाँ बरसना ही चाहिए। प्रज्ञानंद स्वामी के राज्य में बरसात वगैरह सब समय से होने लगा एवं प्रजा बड़ी सुखी हो गयी।

राज्य की सुख-समृद्धि को देखकर पड़ोस के राजा को हुआ कि उधर तो बहुत धन-संपत्ति है। अतः उसने उस राज्य पर घेरा डाल दिया। मंत्रियों ने आकर महात्मा राजा से कहा :

''महाराज ! आज तक तो राज्य ठीक से चल रहा था किन्तु ईर्ष्यावश पड़ोसी राजा हमारा राज्य हड़प करना चाहता है। उसने सीमा पर घेरा डाल दिया है।''

प्रज्ञानंद स्वामी : ''पड़ोसी राज्य के राजा को सादर बुला लाओ।''

राजा को बुलाया गया। प्रज्ञानंद स्वामी ने उससे कहा :

''अगर आप प्रजा का पालन करना चाहते हैं तो ख़ुशी से कर सकते हैं। अब आप प्रजा को सुखी करें और हम भजन के लिए जायेंगे।''

फिर मंत्री से कहा :

''हमारा तुम्बा, कौपीन और टाट का आसन ले आओ।''

प्रज्ञानंद स्वामी ने राजसी पोशाक उतारकर कौपीन पहन ली, तुम्बा हाथ में ले लिया, टाट का आसन बगल में डाल लिया और कहने लगे :

''युद्ध में कई निर्दोष सिपाही मरेंगे तो उनकी पत्नी, बच्चे दुःखी हो जायेंगे। इतने दिन तक तो हमने राज्य भोगा, अब आप भोग लो। हम और आप भी समय पाकर चले जायेंगे लेकिन पृथ्वी तो यहीं-की-यहीं रहेगी।''

आपके चित्त में निर्लोभता है तो आपके निकट लोभी आदमी भी थोड़ा निर्लोभी होने लगेगा। अगर आपके चित्त में दूसरे के लिए स्नेह है तो दूसरे को भी आपके प्रति स्नेह होने लगेगा।

यह कहकर महात्मा तुम्बा लेकर चल पड़े। पड़ोसी राजा आश्चर्यचकित हो गया कि : 'हमारे पास इतना राज्य है फिर भी और पाने की लालसा है लेकिन इन बाबाजी को तो राज्य छोड़ने में देर न लगी !'

पड़ोसी राजा ने बाबाजी को जाते हुए देखकर प्रार्थना की :

''महाराज ! आपके आने से तो प्रजा सुखी

हुई है। मुझे तो प्रजा गालियाँ देगी। महाराज ! मुझे क्षमा कीजिए। यह राज्य आप ही सँभालिये।''

अगर आपके चित्त में निर्लोभता है तो आपके निकट लोभी आदमी भी थोड़ा निर्लोभी होने लगेगा। अगर आपके चित्त में दूसरे के लिए स्नेह है तो दूसरे को भी आपके प्रति स्नेह होने लगेगा। यही कारण है कि बालक को देखकर आप प्रसन्न हो जाते हैं क्योंकि उसमें निर्दोष स्नेह होता है।

प्रजा का खून चूसकर भोगी बननेवाला बरबाद होता है। प्रजा की वस्तु प्रजा की सेवा में लगा देनेवाला प्रजा का भी प्यारा होता है और प्रजा के स्वामी परमात्मा का भी प्यारा हो जाता है।

जिसके जीवन में निर्दोषता होती है, निष्कामता होती है, स्नेह होता है उसके लिए अपने तो अपने होते ही हैं, पराये भी अपने हो जाते हैं, शत्रु भी मित्र बन जाते हैं। यही कारण है कि संत-महापुरुषों को पापी व निंदक के सिवाय सभी सज्जन चाहते हैं क्योंकि उनके लिए न कोई पराया होता है न कोई अपना।

झरने ने मार्ग बदला...

सन् १५०२ में गुरु नानक यात्रा करते-करते वायव्य सरहद पर अटक जिले में पहुँचे। वहाँ एक टीले पर हसन अब्दुल नाम के एक फकीर रहते थे, जिन्हें 'कंधारी फकीर' भी बोलते थे। कंधारी फकीर की कुटिया के पास से एक झरना बहता था। बाला-मरदाना वहीं से पानी लाते थे।

नानकजी कुछ समय वहाँ रहे। लोगों को सत्संग मिला। लोगों की सूझ-बूझ बढ़ी तो भीड़ बढ़ती गयी। नानकजी की कीर्ति देखकर उस कंधारी फकीर के चित्त में ईर्ष्या उत्पन्न हो गयी। कंधारी ने बाला-मरदाना से कहा :

''इस झरने से पानी लेने के लिए मत आया करो। यह मेरा झरना है।''

बाला-मरदाना वापस लौट आये एवं नानकजी से बोले :

''गुरुजी ! आपकी कीर्ति देखकर हसन अब्दुल कंधारी ईर्ष्यावश झरने से पानी भरने के लिए मना कर रहे हैं।''

नानकजी : ''कोई बात नहीं। झरना अगर अकाल पुरुष परमेश्वर का है तो हमारे लिये यहाँ भी बहेगा।''

गुरु नानक ध्यानस्थ हो गये। देखते-ही-देखते जहाँ नानकजी ने पड़ाव डाला था उसी पर्वत की तलहटी से झरना फूटा एवं कंधारी का ऊपर का झरना गायब हो गया। अब कंधारी को पानी भरने के लिए ऊपर से नीचे उतरकर आना पड़ता था। उसे बड़ा क्षोभ हुआ कि : 'इस काफिर ने ऐसा कर दिया !'

एक दिन कंधारी छुपकर ऐसी जगह पर बैठा कि वहाँ से चट्टान गिराये तो नानकजी के सिर पर ही गिरे। कंधारी ने चट्टान को धक्का मारा और नानकजी ने परमेश्वर से एकाकार होकर उस चट्टान को अपना पंजा दिया। वह चट्टान वहीं रुक गई। आज भी नानक के भक्त उस जगह को 'पंजा साहिब' के नाम से पूजते हैं।

कैसी शक्ति है आपके परमेश्वर में ! नानकजी भी तो एक मनुष्य थे ! आप भी एक मनुष्य हो। कबीरजी आपसे बड़े नहीं थे, नानकजी आपसे बड़े नहीं थे, बुद्ध और महावीर आपसे बड़े नहीं थे लेकिन वे बड़े हो गये क्योंकि वे मिथ्या से सत्य की ओर, नश्वर से शाश्वत् की ओर चल पड़े जबकि हम नश्वर की ओर ही

सत्यबुद्धि करके सत्य से विमुख होते गये। दृढ़ता से सत्यस्वरूप का श्रवण-मनन करके उसकी ओर चलते रहे तो विलासी विश्वामित्र से महान् विश्वामित्र हुए।

झरने का रूख बदलनेवाले नानकजी में जो था, वही आपमें है। विष की प्याली को अमृत बनानेवाली मीरा में जो था, वही आपमें है। आठ वर्ष की उम्र में रामी रामदास ने हनुमानजी को प्रकट किया, प्रह्लाद ने स्तंभ में से भगवान नरसिंह को प्रकट किया तथा ध्रुव ने अपनी तीव्र तपस्या से चतुर्भुज नारायण को प्रकट किया। शबरी भीलन ने गुरु मतंग ऋषि को संतुष्ट करके वरदान पाया और भगवान श्रीरामजी ने उनके जूठे बेर खाये।

इन सभी में जो सच्चिदानंद चैतन्य था, वह आपमें है।

यदि आप भी पूर्ण रूप से परमात्मा की शरण में चले जाओ तो अवश्य महान् हो सकते हो।

⊛

काल्ह काम करना जोऊ, सो तो कीजै आज।
मूल अविद्या-नींद ते, शीघ्र ही तू अब जाग॥
शीघ्र ही तू अब जाग, आपना कर ले कारज।
ऐसी मानव-देह फेर, कब मिलहै आरज॥
कह गिरधर कविराय, काटकर भ्रम के जाल।
लखो आपको ब्रह्म, काल का जो है काल॥

'जो काम कल करना है उसे आज ही कर ले। अविद्या की गहरी निद्रा से तू अब शीघ्र ही जाग जा और अपना काम पूरा कर डाल। पता नहीं, यह अमूल्य मानव-तन फिर कब मिलेगा? गिरधर कवि कहते हैं कि जगत के सत्यता की भ्रांति का जाल काटकर अपने-आपको ब्रह्मस्वरूप देख, जो ब्रह्म काल का भी काल है।'

(गिरधर की 'सुबोध कुंडलियाँ')

कर्म ही पूजा है

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥

'जिस परमात्मा से सर्वभूतों की उत्पत्ति हुई है और जिससे यह सर्व जगत व्याप्त है उस परमेश्वर को अपने स्वाभाविक कर्म द्वारा पूजकर मनुष्य परम सिद्धि को प्राप्त होता है।'

(श्रीमद्भगवद्गीता : १८.४६)

अपने स्वाभाविक कर्मरूपी पुष्पों द्वारा सर्वव्यापक परमात्मा की पूजा करके कोई भी मनुष्य परम सिद्धि को प्राप्त हो सकता है, फिर भले ही कोई बड़ा सेठ हो या छोटा-सा कोई गरीब व्यक्ति।

बिहार में मुंगेर और भागलपुर रोड के बीच एक पक्का कुआँ मौजूद है जिसे 'पिसजहारी कुआँ' भी कहते हैं।

श्यामो नामक एक १३ वर्षीया लड़की की शादी हो गयी। सालभर बाद उसके पति की मृत्यु हो गयी और वह लड़की १४ वर्ष की छोटी-सी उम्र में ही विधवा हो गयी। श्यामो ने देखा कि अपने जीवन को आलसी, प्रमादी या विलासी बनाना- यह समझदारी नहीं है। उसने माता-पिता को राजी कर लिया अपना पवित्र जीवन जीने के लिए। उसके माता-पिता

भी महा गरीब थे।

श्यामो सुबह उठकर पाँच सेर आटा पीसती और उसमें से कुछ कमाई कर लेती। फिर नहा-धोकर थोड़ा पूजा-पाठ आदि करके पुनः सूत कातने बैठ जाती। किसीके घर रसोई बनानी होती तो वह रसोई बनाने चली जाती। इस प्रकार उसने अपने को कर्म में पिरोये रखा और जो काम करती उसे बड़ी सावधानी और तत्परता से करती। ऐसा करने से उसे नींद भी बढ़िया आती और थोड़ी देर पूजा-पाठ करती तो उसमें भी मन बड़े मजे से लग जाता। ऐसा करते-करते श्यामो ने देखा कि यहाँ से जो यात्री आते-जाते हैं उन्हें बड़ी प्यास लगती है। श्यामो ने आटा पीसकर, सूत कातकर, किसीके घर की रसोई करके अपना तो पेट पाला ही, बाकी कोरकसर करके जो धन एकत्रित किया था, अपने पूरे जीवन की उस संपत्ति को लगा दिया पथिकों के लिए कुआँ बनवाने में।

मुंगेर-भागलपुर रोड पर वही 'पक्का कुआँ' आज भी श्यामो की कर्मठता, त्याग, तपस्या और परोपकारिता की खबर दे रहा है।

परिस्थितियाँ चाहे कैसी भी आयें किन्तु यदि इन्सान हताश-निराश न हो एवं तत्परतापूर्वक शुभ कर्म करता रहे तो फिर उसके सेवाकार्य भी पूजा-पाठ हो जाते हैं और उसके हृदय में भगवदीय सुख, भगवद्-संतोष जो भक्तिभाव व योग से आते हैं वे ही सुख-शांति भगवद्-प्रीत्यर्थ सेवा करनेवाले के हृदय में प्रकट होते है।

१४ वर्ष की उम्र में ही विधवा हुई श्यामो ने अपने जीवन को पुनः विलासी-विकारी जीवन में गरकाव न किया वरन् पवित्रता, संयम एवं सदाचार का पालन करती हुई तत्परता से कर्म करती रही तो आज उसका पंचभौतिक शरीर भले ही धरती पर नहीं है, पर उसकी कर्मठता, परोपकारिता एवं त्याग की यशोगाथा तो आज भी गायी जा रही है।

परिस्थितियाँ चाहे कैसी भी आयें किन्तु यदि इन्सान हताश-निराश न हो एवं तत्परतापूर्वक शुभ कर्म करता रहे तो उसके सेवाकार्य भी पूजा-पाठ हो जाते हैं।

काश ! लड़ने-झगड़ने और कलह करनेवाले लोग उससे प्रेरणा पायें ! घर में, कुटुम्ब में, समाज में सेवा और स्नेह की सरिता बहायें तो हमारा भारत कितना अच्छा हो ! गाँव-गाँव को गुरुकुल बनायें... घर-घर को गुरुकुल बनायें...

❀

(पृष्ठ ३२ का शेष)

देश एकजुट होकर तरक्की की ऊँचाई को छुए। भगवान व संतों से मेरी ऐसी प्रार्थना है। मुझ पर पूज्य बापू की खूब कृपा है। पंजाब में बापूजी कहीं भी पधारते हैं तो मैं सत्संग का अवसर पा ही लेता हूँ।''

सत्संग के दौरान योगनिष्ठ पूज्यपाद बापू ने साधना में उन्नति तथा दैनिक जीवन में सफलता के अनेक सूत्र प्रदान किये :

१. यदि कोई ब्रह्मवेत्ता सद्गुरु मिल जायें और शिष्य उनके मार्गदर्शन में तत्परता से चल पड़े तो इस मरणधर्मा शरीर में अमर आत्मा का साक्षात्कार हो सकता है।

२. किसीकी श्रद्धा तोड़ना, नफरत फैलाना तो आसान है, पर हृदयों को जोड़ने का काम नानक जैसे महापुरुष ही कर सकते हैं।

३. पूज्य बापू ने अपील की कि राष्ट्र के वक्ता, राजनेता, प्रवचनकर्त्ता भेदभाव बढ़ानेवाले अथवा लोगो को तोड़नेवाले वचन न बोलें।

४. हर मनुष्य एक 'पावर हाउस' है। वह नेत्रों से, आभा से अपने विचारों को अपने इर्द-गिर्द फैलाता है। अपने विचारों में सात्त्विकता व निःस्वार्थता लाइये तथा सात्त्विक आभा का निर्माण कीजिए।

५. सत्संग से विमुख व्यक्तियों के जीवनकाल को 'काला समय' की संज्ञा देते हुए पूज्यश्री ने कहा : **''मनुष्य जन्म पाकर भी सत्संग में रुचि नहीं तो वह जीते-जी मुर्दे के समान है और उसके लिए सारा जीवन ही काला समय है।''**

चार प्रकार के बल

❊ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❊

जीवन में सर्वांगीण उन्नति के लिए चार प्रकार के बल जरूरी हैं : (१) शारीरिक बल (२) मानसिक बल (३) बौद्धिक बल (४) संगठन बल।

पहला बल है शारीरिक बल। शरीर तंदुरुस्त होना चाहिए। मोटा होना शारीरिक बल नहीं है, वरन् शरीर स्वस्थ होना शारीरिक बल है।

दूसरा बल है मानसिक बल। जरा-जरा बात में गुस्सा हो जाना, जरा-जरा बात में डर जाना, चिढ़ जाना- यह कमजोर मन की निशानी है। जरा-जरा बात में घबराना नहीं चाहिए, चिंतित-परेशान नहीं होना चाहिए, वरन् अपने मन को मजबूत बनाना चाहिए।

तीसरा बल है बुद्धिबल। शास्त्र का ज्ञान पाकर अपना, कुल का, समाज का, अपने राष्ट्र का एवं पूरी मानव जाति का कल्याण करने की जो बुद्धि है, वही बुद्धिबल है।

शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक बल तो हो किन्तु संगठनबल न हो तो व्यक्ति व्यापक कार्य नहीं कर सकता। अतः जीवन में संगठन बल का होना भी आवश्यक है।

ये चारों प्रकार के बल कहाँ से आते हैं ? इन सब बलों का मूल केन्द्र है आत्मा। अपना आत्मा-परमात्मा विश्व के सारे बलों का महा खजाना है। बलवानों का बल, बुद्धिमानों की बुद्धि, तेजस्वियों का तेज, योगियों का योग-सामर्थ्य सब वहीं से आते हैं।

ये चारों बल जिस परमात्मा से प्राप्त होते हैं उस परमात्मा से प्रतिदिन प्रार्थना करनी चाहिए :

'हे भगवान ! तुझमें सब शक्तियाँ हैं। हम तेरे हैं, तू हमारा है। तू पाँच साल के ध्रुव के दिल में प्रगट हो सकता है, तू प्रह्लाद के आगे प्रगट हो सकता है... हे परमेश्वर ! हे पाण्डुरंग ! तू हमारे दिल में भी प्रगट होना...'

इस प्रकार हृदयपूर्वक, प्रीतिपूर्वक व शांत भाव से प्रार्थना करते-करते प्रेम और शांति में सराबोर होते जाओ। प्रभुप्रीति और प्रभुशांति सामर्थ्य की जननी है। संयम और धर्मपूर्वक इन्द्रियों को नियंत्रित रखकर परमात्मशांति में अपनी स्थिति बढ़ानेवाले को इस आत्म-ईश्वर की संपदा मिलती जाती है। इस प्रकार प्रार्थना करने से तुम्हारे भीतर परमात्मशांति प्रगट होती जायेगी और परमात्मशांति से आत्मिक शक्तियाँ प्रगट होती हैं जो शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं संगठनबल को बड़ी आसानी से विकसित कर सकती हैं।

हे विद्यार्थियों ! तुम भी आसन-प्राणायाम आदि के द्वारा अपने तन को तंदुरुस्त रखने की कला सीख लो। जप-ध्यान आदि के द्वारा मन को मंजबूत बनाने की युक्ति जान लो। संत-महापुरुषों के श्रीचरणों में आदरसहित बैठकर उनकी अमृतवाणी का पान करके एवं शास्त्रों का अध्ययन कर अपने बौद्धिक बल को बढ़ाने की कुंजी जान लो एवं आपस में संगठित होकर रहो। यदि तुम्हारे जीवन में ये चारों बल आ जायें तो तुम्हारे लिये फिर कुछ भी असंभव न होगा।

विद्यार्थी उत्थान शिविर के मुख्य उद्देश्य

❊ विद्याध्ययन करते हुए बच्चों को तेजस्वी-ओजस्वी बनाने के लिए... ❊ परीक्षा में अच्छे अंकों से उत्तीर्ण होने की युक्तियाँ सिखाने के लिए... ❊ बच्चों के जीवन की नींव पुष्ट करने हेतु उत्तम चारित्र्य का निर्माण करनें के लिए... ❊ योगासन, प्राणायाम, ध्यान और योग की वैज्ञानिक प्रणाली के द्वारा बच्चों की सुषुप्त शक्तियाँ जागृत करन के लिए... ❊ यादशक्ति का विकास करने के लिए... ❊ तन को तन्दुरुस्त, मन को शात, सौम्य और प्रसन्न, बुद्धि को प्रखर और दिव्य बनानें के लिए... ❊ बच्चों मे आत्मविश्वास जगाकर सर्वांगीण विकास द्वारा जीवन

को सफल बनाने के लिए ... ❋ शौर्य, उमंग, उत्साह जगाकर जीवन को समृद्ध और महान् बनाने के लिए... ❋ बच्चों के जीवन में सिंह समान बल भरने के लिए... ❋ अपने माता-पिता, कुटुम्ब-परिवार, समाज, देश और विश्व की सेवा हेतु सुदृढ़ व्यक्तित्व विकसित करने के लिए... ❋ कर्त्तव्यनिष्ठ एवं कर्मठ बनकर हर क्षेत्र में सुख, समृद्धि और सफलतापूर्ण जीवन जीने की योग्यता विकसित करने के लिए... ❋ शरीर-स्वास्थ्य के मूलभूत पाठ सिखाकर शरीर को हृष्ट-पुष्ट व निरोग रखने की युक्तियाँ सिखाने के लिए... ❋ अलौकिक ज्ञान से कठिनतम उलझन को भी पलभर में सुलझाने की युक्तियाँ सिखाने के लिए... ❋ वक्तृत्व स्पर्धा जैसे अनेकानेक जीवनोपयोगी कार्यक्रमों के द्वारा व्यक्तित्व-विकास की युक्तियाँ, मन को वश करके चैतन्य-माधुर्य से मस्त रखने की एवं बुद्धि में समता व सामर्थ्य लाने की कलाएँ सिखाने के लिए... ❋ जीवन में निर्भयता, निश्चिन्तता और दृढ़ संकल्पशक्ति बढ़ाने के लिए... ❋ बीड़ी-सिगरेट, शराब व माँस आदि व्यसनों से होनेवाली हानियों से सावधान करके उनसे मुक्त करने के लिए... ❋ 'यौवन सुरक्षा' के उपाय अवगत कराने के लिए... ❋ माता-पिता के उपकारों के प्रति बच्चों में कृतज्ञता जगाकर माता-पिता के प्रति उनको कर्त्तव्यनिष्ठ बनाने के लिए... ❋ भक्ति, योग और ज्ञान से जीवनपोषक मार्गदर्शन देने के लिए... ❋ बच्चों को श्रीराम, श्रीकृष्ण, गुरु नानकदेव, ज्ञानदेव, रोहिदासजी, रामानंदजी, संत कबीरजी, वाल्मीकिजी, स्वामी विवेकानंद, स्वामी रामतीर्थ, रामकृष्ण परमहंस, पूज्यपाद लीलाशाहजी बापू जैसे महापुरुषों के जीवन द्वारा स्वस्थ, सुखी, सम्मानित और सम्पन्न जीवन जीने की सात्त्विक कलाएँ सिखाने के लिए... ❋ बच्चियों को मीरा, गार्गी, मदालसा व रानी लक्ष्मीबाई जैसी महान् नारी बनाने के लिए... ❋ भारतीय संस्कृति की रक्षा करने में साधु-संतों एवं महापुरुषों के दैवी कार्यों में संस्कृति-रक्षक सैनिक का गौरव हासिल करवाने के लिए समय-समय पर पूज्यश्री के पावन सान्निध्य में विद्यार्थी उत्थान शिविरों का आयोजन किया जाता है जिनका लाभ लेकर विद्यार्थी भाई-बहन अपना जीवन तेजस्वी बना सकते हैं। *(संपादक)*

एकादशी-माहात्म्य

[इन्दिरा एकादशी : ५ अक्तूबर '९९]

युधिष्ठिर ने पूछा : "हे मधुसूदन ! कृपा करके मुझे यह बताइये कि आश्विन के (गुजरात के मुताबिक भादों के) कृष्ण पक्ष में कौन-सी एकादशी होती है ?"

भगवान श्रीकृष्ण बोले : "राजन् ! आश्विन (गुज. भादों) के कृष्ण पक्ष में 'इन्दिरा' नाम की एकादशी होती है । उसके व्रत के प्रभाव से बड़े-बड़े पापों का नाश हो जाता है । नीच योनि में पड़े हुए पितरों को भी यह एकादशी सद्गति देनेवाली है ।

राजन् ! पूर्वकाल की बात है । सत्ययुग में इन्द्रसेन नाम से विख्यात एक राजकुमार थे, जो अब माहिष्मतीपुरी के राजा होकर धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करते थे । उनका यश सब ओर फैल चुका था ।

राजा इन्द्रसेन भगवान विष्णु की भक्ति में तत्पर हो गोविन्द के मोक्षदायक नामों का जप करते हुए समय व्यतीत करते थे और विधिपूर्वक अध्यात्मतत्त्व के चिन्तन में संलग्न रहते थे। एक दिन राजा राजसभा में सुखपूर्वक बैठे हुए थे, इतने ही में देवर्षि नारद आकाश से उतरकर वहाँ आ पहुँचे । उन्हें आया हुआ देख राजा हाथ जोड़कर खड़े हो गये और विधिपूर्वक पूजन करके उन्हें आसन पर बिठाया । इसके बाद वे इस प्रकार बोले : "मुनिश्रेष्ठ ! आपकी कृपा से मेरी सर्वथा कुशल है । आज आपके दर्शन से मेरी सम्पूर्ण यज्ञ-क्रियाएँ सफल हो गयीं । देवर्षे ! अपने आगमन का कारण बताकर मुझ पर कृपा करें ।"

नारदजी ने कहा : "नृपश्रेष्ठ ! सुनो । मेरी बात तुम्हें आश्चर्य में डालनेवाली है । मैं ब्रह्मलोक से यमलोक में गया था । वहाँ एक श्रेष्ठ आसन पर बैठा और यमराज ने भक्तिपूर्वक मेरी पूजा की । उस समय यमराज की सभा में

मैंने तुम्हारे पिता को भी देखा था। वे व्रतभंग के दोष से वहाँ आये थे। राजन् ! उन्होंने तुमसे कहने के लिये एक सन्देश दिया है, उसे सुनो। उन्होंने कहा है : 'बेटा ! मुझे 'इन्दिरा एकादशी' के व्रत का पुण्य देकर स्वर्ग में भेजो।' उनका यह सन्देश लेकर मैं तुम्हारे पास आया हूँ। राजन् ! अपने पिता को स्वर्गलोक की प्राप्ति कराने के लिये 'इन्दिरा एकादशी' का व्रत करो।''

राजा ने पूछा : ''भगवन् ! कृपा करके 'इन्दिरा एकादशी' का व्रत बताइये। किस पक्ष में, किस तिथि को और किस विधि से यह व्रत करना चाहिये।''

नारदजी ने कहा : ''राजेन्द्र ! सुनो। मैं तुम्हें इस व्रत की शुभकारक विधि बतलाता हूँ। आश्विन मास के कृष्ण पक्ष में दशमी के उत्तम दिन को श्रद्धायुक्त चित्त से प्रातःकाल स्नान करो। फिर मध्याह्न काल में स्नान करके एकाग्रचित्त हो एक समय भोजन करो तथा रात्रि में भूमि पर सोओ। रात्रि को अन्त में निर्मल प्रभात होने पर एकादशी के दिन दातुन करके मुँह धोओ। इसके बाद भक्तिभाव से निम्नांकित मंत्र पढ़ते हुए उपवास का नियम ग्रहण करो :

अद्य स्थित्वा निराहारः सर्वभोगविवर्जितः ।
श्वो भोक्ष्ये पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत ॥

'कमलनयन भगवान नारायण ! आज मैं सब भोगों से अलग हो निराहार रहकर कल भोजन करूँगा। अच्युत ! आप मुझे शरण दें।'

इस प्रकार नियम करके मध्याह्न काल में पितरों की प्रसन्नता के लिये शालग्राम-शिला के सम्मुख विधिपूर्वक श्राद्ध करो तथा दक्षिणा से ब्राह्मणों का सत्कार करके उन्हें भोजन कराओ। पितरों को दिये हुए अन्नमय पिण्ड को सूँघकर गाय को खिला दो। फिर धूप और गन्ध आदि से भगवान हृषिकेश का पूजन करके रात्रि में उनके समीप जागरण करो। तत्पश्चात् सबेरा होने पर द्वादशी के दिन पुनः भक्तिपूर्वक श्रीहरि की पूजा करो। उसके बाद ब्राह्मणों को भोजन कराकर भाई-बन्धु, नाती और पुत्र आदि के साथ स्वयं मौन होकर भोजन करो।

राजन् ! इस विधि से आलस्यरहित होकर यह व्रत करो। इससे तुम्हारे पितर भगवान विष्णु के वैकुण्ठधाम में चले जायेंगे।''

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं : ''राजन् ! राजा इन्द्रसेन से ऐसा कहकर देवर्षि नारद अन्तर्धान हो गये। राजा ने उनकी बतायी हुई विधि से अन्तःपुर की रानियों, पुत्रों और भृत्योंसहित उस उत्तम व्रत का अनुष्ठान किया।

कुन्तीनन्दन ! व्रत पूर्ण होने पर आकाश से फूलों की वर्षा होने लगी। इन्द्रसेन के पिता गरुड़ पर आरूढ़ होकर श्रीविष्णुधाम को चले गये और राजर्षि इन्द्रसेन भी निष्कण्टक राज्य का उपभोग करके अपने पुत्र को राजसिंहासन पर बिठाकर स्वयं स्वर्गलोक को चले गये। इस प्रकार मैंने तुम्हारे सामने 'इन्दिरा एकादशी' व्रत के माहात्म्य का वर्णन किया है। इसको पढ़ने और सुनने से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है।''

※

तर्पण और श्राद्ध

एक बार महाराज करन्धम महाकाल का दर्शन करने गये। कालभीति महाकाल ने जब करन्धम को देखा, तब उन्हें भगवान शंकर का वचन स्मरण हो आया। उन्होंने उनका स्वागत-सत्कार किया और कुशल-प्रश्नादि के बाद वे सुखपूर्वक बैठ गये। तदनन्तर करन्धम ने महाकाल (कालभीति) से पूछा :

''भगवन् ! मेरे मन में एक बड़ा संशय है कि यहाँ जो पितरों को जल दिया जाता है, वह तो जल में ही मिल जाता है, फिर वह पितरों को कैसे प्राप्त होता है ? यही बात श्राद्ध के सम्बन्ध में भी है। पिण्ड आदि जब यहीं पड़े रह जाते हैं, तब हम कैसे मान लें कि पितर लोग उन पिण्डादि का उपयोग करते हैं। साथ ही यह कहने का साहस भी नहीं होता कि वे पदार्थ पितरों को किसी प्रकार मिले ही नहीं, क्योंकि स्वप्न में देखा जाता है कि पितर मनुष्यों से श्राद्ध आदि की याचना करते हैं। देवताओं के चमत्कार भी प्रत्यक्ष देखे जाते हैं। अतः मेरा मन भी इस विषय में मोहग्रस्त हो रहा है।''

महाकाल ने कहा : ''राजन् ! देवता और पितरों की योनि ही इस प्रकार की है कि दूर से कही हुई बात, दूर से किया हुआ पूजन-सत्कार, दूर से की हुई अर्चा, स्तुति तथा भूत, भविष्य और वर्त्तमान की सारी बातों को वे जान लेते हैं और वहीं पहुँच जाते हैं। उनका शरीर केवल नौ तत्त्वों (पाँच तन्मात्राएँ और चार अन्तःकरण) का बना होता है, दसवाँ जीव होता है, इसलिये उन्हें स्थूल उपभोगों की आवश्यकता नहीं होती।''

करन्धम ने कहा : ''यह बात तो तब मानी जाय, जब पितर लोग यहाँ भूलोक में हों। परन्तु जिन मृतक पितरों के लिए यहाँ श्राद्ध किया जाता है, वे तो अपने कर्मानुसार स्वर्ग

या नरक में चले जाते है। दूसरी बात, जो शास्त्रों में यह कहा गया है कि पितर लोग प्रसन्न होकर मनुष्यों को आयु, प्रज्ञा, धन, विद्या, राज्य, स्वर्ग या मोक्ष प्रदान करते हैं यह भी सम्भव नहीं है, क्योंकि जब वे स्वयं कर्मबन्धन में पड़कर नरक में हैं, तब दूसरों के लिए कुछ कैसे करेंगे ?''

महाकाल ने कहा : ''ठीक है, किन्तु देवता, असुर, यक्ष आदि के तीन अमूर्त तथा चारों वर्णों के चार मूर्त, ये सात प्रकार के पितर माने गये हैं। ये नित्य पितर हैं। ये कर्मों के आधीन नहीं, ये सबको सब कुछ देने में समर्थ हैं। इन नित्य पितरों के अत्यन्त प्रबल इक्कीस गण हैं। वे तृप्त होकर श्राद्धकर्त्ता के पितरों को, वे चाहे कहीं भी हों, तृप्त करते हैं।''

करन्धम ने कहा : ''महाराज ! यह बात तो समझ में आ गयी, किन्तु फिर भी एक सन्देह है। भूत-प्रेतादि के लिए जैसे एकत्रित बलि आदि दी जाती है, वैसे ही एकत्रित करके संक्षेप से देवतादि के लिये भी क्यों नहीं दी जाती ? देवता, पितर, अग्नि, इनको अलग-अलग नाम लेकर देने में बड़ा झंझट तथा विस्तार से कष्ट भी होता है।''

महाकाल ने कहा : ''सभी के विभिन्न नियम हैं। घर के दरवाजे पर बैठनेवाले कुत्ते को जिस प्रकार खाने को दिया जाता है, क्या उसी प्रकार एक विशिष्ट सम्मानित व्यक्ति को भी दिया जाय ? ...और क्या वह उस तरह दिये जाने पर स्वीकार करेगा ? अतः जिस प्रकार भूतादि को दिया जाता है उसी प्रकार देने पर देवता उसे ग्रहण नहीं करते। बिना श्रद्धा के दिया हुआ चाहे वह जितना भी पवित्र तथा बहुमूल्य क्यों न हो, वे उसे कदापि नहीं लेते। श्रद्धापूर्वक पवित्र पदार्थ भी बिना मंत्र के वे स्वीकार नहीं करते।''

करन्धम ने कहा : ''मैं यह जानना चाहता हूँ कि जो दान दिया जाता है, वह कुश, जल और अक्षत के साथ क्यों दिया जाता है ?''

महाकाल ने कहा : ''पहले भूमि पर जो दान दिये जाते थे, उन्हें असुर लोग बीच में ही घुसकर ले लेते थे। देवता और पितर मुँह देखते ही रह जाते। आखिर उन्होंने ब्रह्माजी से शिकायत की।

ब्रह्माजी ने कहा कि पितरों को दिये गये पदार्थों के साथ तिल, जल, कुश एवं जौ देवताओं को दिया जाय, उसके साथ अक्षत (जौ, चावल), जल, कुश का प्रयोग हो। ऐसा करने पर असुर इन्हें न ले सकेंगे। इसीलिये यह परिपाटी है।''
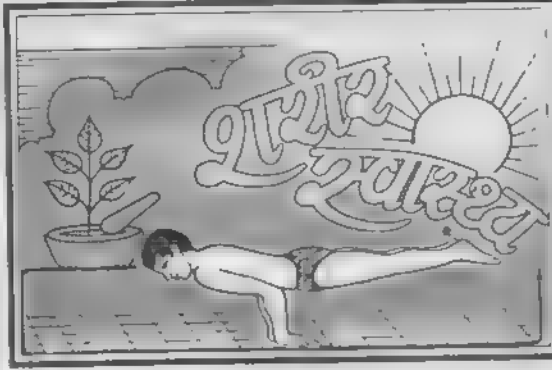
जमीकन्द - सूरन

आयुर्वेद के मतानुसार सभी प्रकार की कन्द-सब्जियों मे सूरन सर्वश्रेष्ठ है। बवासीर के रोगियों को आज भी वैद्य सूरन एवं छाछ पर रहने के लिए कहते हैं। आयुर्वेद में इसीलिए इसे 'अर्शोघ्न' भी कहा गया है।

गुणधर्म : सूरन की दो प्रजातियाँ पायी जाती हैं- लाल और सफेद। लाल सूरन को काटने से हाथ में खुजली होती है। यह औषधि में ज्यादा प्रयुक्त होता है जबकि सफेद सूरन का उपयोग सब्जी बनाने में किया जाता है।

आयुर्वेद के अनुसार सूरन पचने मे हल्का, रुक्ष, तीक्ष्ण, कड़वा, कसैला और तीखा, उष्णवीर्य, कफ एवं वातशामक, रुचिवर्धक, शूलहर, आर्तव (मासिक) बढ़ानेवाला, बलवर्धक, यकृत (लीवर) के लिए उत्तेजक एवं बवासीर (अर्श), गुल्म एवं प्लीहा के दर्द में पथ्यकारक है।

सफेद सूरन अरुचि, अग्निमांद्य, कब्जियत, उदरशूल, गुल्म (वायुगोला), आमवात, यकृत-प्लीहा के मरीजों के लिए तथा कृमि, खांसी एवं श्वास की तकलीफवालों के लिए उपयोगी है। सूरन पोषक रसों का शोषण करके शरीर में शक्ति उत्पन्न करता है। पूरे दिन की बेचैनी, अपच, गैस, खट्टी डकार एवं हाथ-पैरों में दर्द के साथ

शारीरिक रूप से कमजोर व्यक्तियों के लिए सूरन का उपयोग लाभप्रद है।

लाल सूरन स्वाद में कसैला, तीखा, पचने में हल्का, रुचिकर, दीपक, पाचक, पित्त करनेवाला एवं दाहक है तथा कृमि, कफ, वायु, दमा, खांसी, उल्टी, शूल, वायुगोला आदि रोगों का नाशक है। लाल सूरन उष्णवीर्य, जलन उत्पन्न करनेवाला, वाजीकारक, कामोद्दीपक, मेदवृद्धि, बवासीर एवं वायु तथा कफ विकारों से उत्पन्न रोगों के लिए विशेष लाभदायक है।

हृदयरोग, रक्तस्राव एवं कोढ़ के रोगियों को सूरन का सेवन नहीं करना चाहिए।

सूरन की सब्जी ज्यादा कड़क या कच्ची न रहे इस ढंग से बनानी चाहिए। ज्यादा कमजोर लोगों के लिए सूरन का अधिक सेवन हानिकारक है। सूरन से मुँह आना, कंठदाह या खुजली जैसा हो तो नींबू अथवा इमली का सेवन करें।

बवासीर (मस्से-अर्श) में औषधि-प्रयोग

(१) सूरन के टुकड़ों को पहले उबाल लें और फिर सुखाकर उनका चूर्ण बना लें। यह चूर्ण ३२० ग्राम, चित्रक १६० ग्राम, सोंठ ४० ग्राम, कालीमिर्च २० ग्राम एवं गुड़ १ किलो। इन सबको मिलाकर बेर जैसी छोटी-छोटी गोलियाँ बना लें। इसे 'सूरन वटक' कहते हैं। प्रतिदिन सुबह शाम ३-३ गोलियाँ खाने से बवासीर में लाभ होता है।

(२) सूरन के टुकड़ों को भाप में पकाकर तथा तिल के तेल में बनाई गई सब्जी का सेवन करने से एवं ऊपर से छाछ पीने से सभी प्रकार की बवासीर में लाभ होता है। यह प्रयोग ३० दिन तक करें।

- वैद्यराज अमृतभाई
साँईं श्री लीलाशाहजी उपचार केन्द्र, संत श्री आसारामजी आश्रम, जहाँगीरपुरा, वरियाव रोड, सूरत।

भेटासी (गुज.) : संत श्री आसारामजी आश्रम, भेटासी में नवनिर्मित सत्संग-भवन का उद्घाटन २५ अगस्त '९९ को पूज्यश्री के पावन करकमलों द्वारा हुआ। इस अवसर पर आश्रम में भण्डारे का आयोजन किया गया जिसमें शामिल होकर हजारों भक्तों ने भोजन-प्रसाद ग्रहण किया।

संत श्री आसारामजी आश्रम, बील (वड़ोदरा): २६ और २७ अगस्त को यहाँ श्रावणी पूर्णिमा रक्षाबंधन महोत्सव व सत्संग का आयोजन हुआ। देश के विभिन्न भागों से आये हुए पूर्णिमा व्रतधारी साधकों ने दर्शन-सत्संग प्राप्त कर प्रसाद ग्रहण किया। आगरा (उ. प्र.) के सांसद श्री भगवान शंकर रावत भी यहाँ शामिल हुए तथा दर्शन-सत्संग प्राप्त कर उन्होंने धन्यता का अनुभव किया।

व्रत-नियम में दृढ़ पूर्णिमाव्रतधारी हजारों साधकों को साधना में आगे बढ़ने की राह बताते हुए ज्ञान, भक्ति व योगमार्ग के अनुभवनिष्ठ पूज्यश्री ने हृदयस्पर्शी वाणी में कहा : **''आप अकेले मुक्त हो जाओ तो ८४ लाख माताओं को गर्भ की पीड़ा से बचा सकते हो। मन की कुचालों को समझकर सजग रहते हुए इस चातुर्मास में मौन का अवलंबन लो। मौन से शक्ति का संचय होता है जो ऐहिक तथा पारमार्थिक जगत के लिए नितान्त आवश्यक है।''**

लगभग १५-२० वर्ष पूर्व डीसा (गुज.) में की हुई अपनी मौन-साधना का अनुभव बताते हुए पूज्यश्री ने कहा : **''जो शांति, सामर्थ्य का विकास हमने मौन में देखा, वैसा अन्य उपायों से नहीं देखा।''**

बारडोली (गुज.) : २९ से ३१ अगस्त तक तीन दिवसीय प्रवचन के दौरान बारडोली एवं आसपास के लोगों में अपूर्व उत्साह तथा भगवद्-कथा के प्रति प्रियता देखने को मिली। स्कूटर, बस, ट्रक, ट्रैक्टर आदि वाहनों

में भरकर तो लोग आते ही थे, बड़ी संख्या में वे भगवद्-प्रेमी पैदल भी आते-जाते देखे गये। तुलसीदासजी ने ऐसे भगवद्-प्रेमियों के लिए ही कहा होगा :

संत मिलन को जाइये, तजि मोह माया अभिमान।
ज्यों-ज्यों पग आगे धरे, कोटि यज्ञ समान॥

मनुष्य जीवन के परम लक्ष्य मुक्ति की राह बतानेवाले पूज्यश्री ने अपनी अनुभवसंपन्न अमृतवाणी का रसपान कराते हुए कहा : **''तपस्या से मुक्ति नहीं मिलती, धन से मुक्ति नहीं मिलती, सत्ता से मुक्ति नहीं मिलती, सौन्दर्य से मुक्ति नहीं मिलती। यदि सौन्दर्य से मुक्ति मिलती तो भगवान ललनाओं के पर्स में ही रहते। निर्धनता से मुक्ति मिलती तो भगवान गरीबों के डिब्बे में ही रहते। सत्ता से मुक्ति मिलती तो नेताओं के जेब में ही रहते। तपस्या से मुक्ति मिलती तो रावण ने, हिरण्यकशिपु ने खूब तपस्या की थी। मुक्ति आत्मज्ञान से मिलती है जिसे हर मनुष्य प्राप्त कर सकता है।''**

संत श्री आसारामजी आश्रम, सूरत : २ से ५ सितम्बर तक ४ दिवसीय सत्संग-प्रवचन में गुजरात के अलावा अन्य प्रांतों से बड़ी संख्या में श्रद्धालुओं का आगमन हुआ। ४७००० वर्ग फुट का स्थायी पंडाल तथा उसके चारों ओर भी पंडाल लगाया गया था। इतने विशाल पंडाल को भी भक्तों की भीड़ ने नन्हा कर दिया। भगवान श्रीकृष्ण की मधुर लीलाओं का स्मरण तथा मक्खन-मिश्री का प्रसाद वितरण किया गया। इसे आध्यात्मिकता का संपुट देते हुए गीता-भागवत के मर्मज्ञ पूज्यश्री ने देश-विदेश से आई हुई विशाल जनमेदनी को संबोधित करते हुए कहा : **''मनुष्य में इतना सामर्थ्य है कि वह भगवान के भी माँ-बाप, भाई-बहन, शत्रु-मित्र बन सकता है। मथुरा में देवकी-वसुदेव के यहाँ श्रीकृष्ण का अवतरण हुआ था। तुम्हारे चित्तरूपी देवकी के यहाँ भी उन्हें अवतरित होने दो। हरेक जीव के अतःकरणरूपी यमुना में अहंकाररूपी कालीय नाग रहता है जिसकी राग, द्वेष, ईर्ष्या, चुगली, वासना, कामनारूपी कई फनें हैं। इस कालीय नाग को नाथा जाय तो आत्मकृष्ण की विजय-ही-विजय है।''**

मालपुर (गुज.) : ७ और ८ सितम्बर तक दो दिन के इस गीता-भागवत सत्संग समारोह में पूज्यश्री ने सरल हृदयी ग्राम्य भक्तों को लोकभोग्य शैली में गीता-भागवत का रसपान कराया। मधुर कीर्तन की मधुर धुन से लोग आनंदित हो उठे।

संत श्री आसारामजी आश्रम, रेलमगरा (राज.) : उदयपुर से करीब ८० कि.मी. दूर स्थित इस छोटे-से ग्राम के श्रद्धालु भक्त पूज्यश्री को अपने गाँव ले जाने में सफल हुए जहाँ आश्रम की साध्वी तृप्ति बहन का सत्संग पहले से ही चल रहा था। १० सितम्बर की शाम पूज्य बापू वहाँ पहुँचे, अपनी आत्मस्पर्शी अमृतवाणी का रसपान कराया, सत्संग की पूर्णाहुति की तथा इस नवनिर्मित आश्रम का उद्घाटन किया।

उदयपुर : बी. एन. कालेज मैदान में १२ से १५ सितम्बर तक गीता-भागवत सत्संग समारोह संपन्न हुआ जिसमें करीब नब्बे हजार श्रद्धालुगण प्रतिदिन प्रवचन का लाभ लेते थे। मानवमात्र के परम लक्ष्य का स्मरण कराते हुए पूज्यश्री ने कहा : **''संसार में कर्म ऐसे करो जो बंधन का कारण न हो। कर्म से कर्मबंधन काटने के लिए तुम यहाँ आये हो, कर्मबंधन बढ़ाकर जन्म-मरण के चक्र में फँस मरने के लिए नहीं। आत्मा-परमात्मा का ज्ञान प्राप्त कर मुक्त होने के लिए तुम यहाँ आये हो। यह सदैव स्मरण रखकर काम करो।''**

जयपुर : गुलाबी नगरी जयपुर के राजापार्क में साढ़े चार लाख वर्ग फुट पर बना विशाल सत्संग पंडाल १६ से १९ सितम्बर तक चलनेवाले सत्संग के पहले दिन ही लघु पड़ने लगा। स्थानीय लोगों के अनुसार इतना जनसैलाब, शांति और प्रीति आज तक जयपुर में नहीं देखी गई। सनातन धर्म और संतों के प्रति श्रद्धा-भक्ति का अपूर्व उदाहरण यहाँ देखने को मिला। पूज्यश्री ने भी ज्ञान-भक्ति-योग का प्रसाद खुले दिल से बाँटा। पूज्यश्री ने कहा : **''जैसे सब्जी लवणमय, खीर शर्करामय होती है वैसे ही मानवमात्र श्रद्धामय है।''**

तामसिक, राजसिक व सात्त्विक श्रद्धा का उल्लेख करते हुए पूज्यश्री ने सात्त्विक श्रद्धा पर विशेष बल दिया।

राजस्थान के स्वास्थ्य मंत्री श्री राजेन्द्र सिंह चौधरी तथा खाद्य मंत्री श्री रामकिशन वर्मा ने भी सत्संग-प्रवचन में शामिल होकर धन्यता का अनुभव किया।

चंडीगढ़ : स्वधर्मरक्षा के लिए मर मिटनेवाले वीर शहीदों की भूमि पंजाब में २३ से २६ सितम्बर तक चार दिवसीय गीता-भागवत सत्संग व पूर्णिमा दर्शनोत्सव संपन्न हुआ। २४ सितम्बर को देश के विभिन्न भागों से आये हुए पूनम व्रतधारी साधकों ने गुरुदर्शन कर भोजन-प्रसाद ग्रहण किया। पूज्यश्री के आगमन की प्रतीक्षा में वर्षों से आँखें

बिछाये हुए विशाल जनसैलाब की उपस्थिति से सेक्टर २० का विशाल मैदान पहले दिन ही लघु पड़ने लगा।

अपने पूरे परिवारसहित पंजाब के राज्यपाल श्री बी. के. एन. छिब्बर, मुख्यमंत्री श्री प्रकाश सिंह बादल तथा पंजाब सरकार के अन्य मंत्रीगण श्री बलरामजी दास टंडन एवं श्री एम. एम. मित्तल भी घण्टों बैठकर पूज्यश्री की आत्मस्पर्शी अमृतवाणी का रसपान करते रहे।

राज्यपाल श्री बी. के. एन. छिब्बर ने २५ सितम्बर को चंडीगढ़ के विभिन्न विद्यालयों से आये हुए हजारों विद्यार्थियों व भक्त-समुदाय को अपने संबोधन में कहा : "आज का दिन महान् दिन है। खूबसूरत चंडीगढ़ में खूबसूरत बच्चों के लिए आज का दिन खूबसूरत है। इन खूबसूरत बच्चों को शिक्षा देने के लिए पूज्य बापू स्वयं विराजमान हैं। आप इतने महान् हैं कि आपके बारे में कुछ भी कहना हमारे लिए बड़ा कठिन है।"

मुख्यमंत्री श्री प्रकाश सिंह बादल ने संत श्री आसारामजी आश्रम, चंडीगढ़ की पावन-स्थली का शिलान्यास किया और अपनी नम्रताभरी वाणी में बोले : **"मुझ जैसे साधारण व्यक्ति से इस पवित्र स्थल का शिलान्यास कराया इससे पूज्य बापू की महानता व अपने प्यारों के प्रति उनकी प्रीति का परिचय मिलता है। मैं समितिवालों से कहता हूँ कि मेरे लायक कोई काम हो तो आप लोग पूज्य बापूजी तक न जाना वरन् मुझे ही सेवा का मौका दिया करना। हमारे इस पंजाब को प्रेमरस से सींचनेवाले ऐसे सत्संग-स्थल की खूब आवश्यकता थी ताकि उसका लाभ लेकर हम भेदभाव मिटाकर मानव को मानव से जोड़ें, सभी खुशहाल हों, शाद-आबाद हों, सभी अपने-अपने कर्त्तव्यपालन में अग्रसर हों... मेरा अपना पंजाब तो क्या, पूरा भारत**

(शेष पृष्ठ २५ पर)

अन्य सत्संग-कार्यक्रम

दिनांक	शहर	कार्यक्रम	समय	स्थान	संपर्क फोन
२७ शाम से २९ सितम्बर '९९	कैथल (हरियाणा)	सत्संग समारोह	सुबह ९-३० से ११-३० शाम ३-३० से ५-३०	आर. के. एस. डी. कालेज ग्राउण्ड, अम्बाला रोड, कैथल।	(०१७४६) २८८४८, २८७५४, २२४८१, २३५१७.
३० सितम्बर से ३ अक्तूबर '९९	कुरुक्षेत्र (हरियाणा)	सत्संग समारोह	सुबह १० से १२ शाम ४ से ६	ब्रह्मसरोवर, कुरुक्षेत्र।	(०१७४४) २९४२६, २१३९४, २१६४६, २५५४६, २२३१०.
८ से ११ अक्तूबर '९९	कानपुर	सत्संग समारोह	सुबह ९-३० से ११-३० शाम ४ से ६	ब्रिजेन्द्रस्वरूप पार्क, कानपुर।	(०५१२) २८०४२६, २८०४३०, मोबाईल : ०९८३९०३४६२०
१५ से १७ अक्तूबर '९९	दिल्ली	विद्यार्थी शिविर आम सत्संग दि.१८.	आम सत्संग रोज शाम ३-३० से ५-३०	पप्पनकलां, दिल्ली।	(०११) ५७२९३३८, ५७६४९६१.
१८ से २० अक्तूबर '९९	दिल्ली	ध्यानयोग शिविर	आम सत्संग रोज शाम ३-३० से ५-३०	पप्पनकलां, दिल्ली।	(०११) ५७२९३३८, ५७६४९६१.
२१ से २३ अक्तूबर '९९	आगरा	सत्संग समारोह प्रथम दो दिन श्री सुरेशानंदजी का		बलकेश्वर कॉलोनी ग्राउण्ड, आगरा।	(०५६२) ३७१७७०, ३७२०१६, २१३३५५.
२४ से २६ अक्तूबर '९९	आगरा आश्रम	शरदपूर्णिमा शिविर	आम सत्संग रोज शाम ४ से ६	संत श्री आसारामजी आश्रम, आगरा-मथुरा रोड, आगरा।	(०५६२) ३७१७७०, ३७२०१६, २१३३५५.
२७ अक्तूबर	सरमथुरा आश्रम	सत्संग समारोह	सुबह १० से १२ शाम ३ से ५	संत श्री आसारामजी आश्रम, महाकालेश्वर रोड, सरमथुरा, जि. धौलपुर (राज.).	(०५६४६) ३२८०२६
२८ से ३१ अक्तूबर '९९	ग्वालियर आश्रम	ध्यान योग शिविर	आम सत्संग रोज शाम ३-३० से ५-३०	संत श्री आसारामजी आश्रम, शिवपुरी रोड, केदारपुर कोठी, ग्वालियर।	(०७५१) ३३५८८८

पूर्णिमा दर्शन : २४ अक्तूबर '९९. आगरा आश्रम में।

POSTING FROM AHMEDABAD 2-10 OF EVERY MONTH. POSTING FROM MUMBAI 9-10 OF EVERY MONTH. POSTING FROM DELHI 10-11 OF EVERY MONTH.

R.N.I. NO. 48873/91 PSO LIC. NO. 207 GAMC/1132
MUMBAI, BYCULLA PSO LIC. NO. 03 Regd. No. MH/MNW-02
DELHI REGD. NO. DL-11513/99 PSO LIC. NO.-U(C) 232/99

साधु संग है कल्पतरु, बैठो छाया तास । वेद-शास्त्र कहते हैं, पूरन होवे आस ॥
प्रजा के प्यारे, संतों के दुलारे पंजाब के मुख्यमंत्री श्री प्रकाशसिंह बादल तथा राज्यपाल श्री बी. के. एन. छिब्बर ने चंडीगढ़ में पूज्यश्री के सत्संगरूपी कल्पतरु की छाया में बैठकर सत्संग-पान किया ।

कथा-कीर्तन-भजन है, भवसागर में सेत । कह श्रुति सो पार हो, जो जन राखत हेत ॥
पूज्य बापू की सत्संग-सरिता में सराबोर चंडीगढ़ का विशाल जनसैलाब ।

अपने सद्गुरु का संदेश, जन-जन को हमें सुनाना है । एक बार भारत को फिर से, विश्वगुरु बनाना है ॥
अपने सद्गुरु के संदेश से समाज में नई चेतना लाने के लिए नरोड़ा (अमदावाद) के साधकों ने निकाली भव्य संकीर्तन यात्रा ।